संस्कृत गद्य मंजरी

आगरा विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा के लिए
प्रस्तावना एवं व्याख्या सहित
संस्कृत गद्य संग्रह

सम्पादक और संग्रहकर्ता
स्व० पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय एम० ए०, शास्त्री
श्री शान्तिकुमार नानूराम व्यास एम० ए०



प्रकाशक
साहित्य निकेतन
श्रद्धानन्द पार्क
कानपुर
१९५७

में
इस रू
पूर्ण पा...रण]

[मूल्य २)२५

प्रकाशक :
साहित्य निकेतन,
श्रद्धानन्द पार्क, कानपुर

मुद्रक :—
श्री प्रेमचंद मेहरा
न्यू ईरा प्रेस, इलाहाबाद।

आमुख

बी० ए० कक्षा के लिये आदर्श संस्कृत-गद्य-संग्रह की आवश्यकता बहुत दिनों से थी। भारतीय विश्वविद्यालयों की बी० ए० कक्षाओं के संस्कृत विद्यार्थियों को प्रायः 'कादम्बरी' या 'हर्षचरित' सरीखे विशाल-काव्य गद्य-ग्रन्थों के कतिपय अंश पढ़ने पड़ते हैं। इस प्रकार का पाठ्यक्रम स्पष्टतया दोषपूर्ण है। विषय संकोच और कभी कभी अरोचकता के साथ, इस प्रकार के पाठ्यक्रम का प्रमुख दोष यह भी है कि एक विशेष लेखक तक ही अध्ययन के सीमित होने के कारण, विद्यार्थियों को संस्कृत के सुन्दरतम गद्य-निबन्धों का स्वतंत्र अध्ययन करने के लिये हार्दिक रुचि और प्रेरणा नहीं देता है। विश्वविद्यालयों के छात्रगण प्राथः 'कादम्बरी' के 'कथामुखप्रकरण' से घबराया करते हैं। प्रस्तुत 'संस्कृत-गद्य-मंजरी' का संकलन इसी विचार से किया गया है कि विद्यार्थियों के सामने संस्कृत की प्रमुख गद्य-रचनाओं के ऐसे संकलित अंश रक्खे जायँ जो कि विषय की दृष्टि से अनेकरूप, रोचक और लेखक की सभी विशेषताओं से युक्त होते हुए भी अनतिदीर्घ हों। प्रस्तुत संकलन में अति पुरातन लेखकों से लेकर आधुनिक लेखकों तक की रचनाओं के गद्यांश हैं। बाण की रचनाओं को इस संकलन में जो सबसे अधिक स्थान दिया गया है वह समस्त संस्कृत-गद्य-साहित्य में बाण के सर्वश्रेष्ठ स्थान के अनुरूप ही है। संस्कृत के गद्य-साहित्य की उत्पत्ति और विकास पर आरम्भ में एक विस्तृत लेख और अन्त में विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ इस संकलन की ऐसी विशेषता हैं जो कि इसे आशा है, एक स्वतः पूर्ण पाठ्य-पुस्तक बना देगी।

—संकलनकर्ता

प्रकाशक के दो शब्द

इस पुस्तक के प्रथम दो संस्करण अँगरेजी प्रस्तावना और व्याख्या सहित प्रकाशित हुए थे। इधर विश्वविद्यालयों ने हिन्दी को भी शिक्षा एवं परीक्षा का माध्यम स्वीकार कर लिया है। इस नवीन परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत तृतीय संस्करण को हिन्दी प्रस्तावना एवं व्याख्या सहित प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्याओं के हिन्दी अनुवाद करने का श्रेय स्वर्गीय पाण्डेय जी के सुयोग्य शिष्य पं० विश्वनाथ प्रसाद गौड़ एम० ए० शास्त्री प्राध्यापक वि० सिं० सनातन धर्म कालेज कानपुर को प्राप्त है। उन्होंने इधर अस्वस्थ होते हुए भी इस कार्य को जिस लगन और उत्साह से सम्पादित किया है उसके लिए प्रकाशक उनका विशेष रूप से आभारी है।



विषय-सूची

———

प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य

उत्पत्ति तथा विकास—संस्कृत में गद्य का प्रयोग वैदिक काल से होता आया है। कृष्णयजुर्वेद, ब्राह्मण तथा उपनिषद् अधिकांश गद्य में ही हैं। तत्पश्चात् गद्य का प्रयोग महाभारत में देख पड़ता है। यास्क (७०० ई० पू०) का 'निरुक्त' गद्य में विरचित है। पतंजलि (१२० ई० पू०) ने अपना महाभाष्य गद्य में लिखा है। पद्य की अपेक्षा गद्य की श्रेष्ठता दिखलाने के लिये ही प्राचीनकाल से यह उक्ति प्रचलित है—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'—'गद्य ही कवियों की कसौटी है।' संस्कृत साहित्य में गद्य का उपयोग प्रधानतया टीकाओं में, व्याकरण-ग्रन्थों में तथा ज्योतिष आदि वैज्ञानिक ग्रन्थों में हुआ है। काव्य-माध्यम की दृष्टि से गद्य का स्थान पद्य की अपेक्षा गौण है और उसका प्रयोग कथाओं में, आख्यायिकाओं में तथा आंशिक रूप में नाटकों में हुआ है।

संस्कृत गद्य-काव्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित है। इसका उद्भव कब और कैसे हुआ, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। गद्य-काव्य का सर्वप्रथम दर्शन दण्डी, सुबन्धु और बाण की कृतियों में होता है, वह भी पूर्ण विकसित रूप में। उनके पूर्व के लेखकों तथा रचनाओं का इतिहास निबिड़ अन्धकार में छिपा है। हां इतना तो निश्चित है कि गद्य-काव्य भी संस्कृत साहित्य की एक

परम प्राचीन शाखा है। कात्यायन (३०० ई० पू०) अपने वार्तिक में 'आख्यायिका' का उल्लेख करते हैं[१]। पतञ्जलि अपने महाभाष्य में तीन आख्यायिकाओं से परिचित हैं—'वासवदत्ता', 'सुमनोत्तरा' और 'भैमरथी'[२]। बृहत्कथा, पंचतन्त्र की कथायें तथा तन्त्राख्यायिका में 'कथा' और 'आख्यायिका' (जो गद्य-काव्य के ही दो भेद हैं) का जो उल्लेख है, उनका गद्य-काव्य से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं। पर यह निर्विवाद है कि गद्य-काव्य की सृष्टि पद्य-काव्य से लोककथाओं के माध्यम द्वारा ही हुई है। बाण 'हर्षचरित' में भट्टार हरिचन्द्र[३] नामक एक उच्च-कोटि के गद्य लेखक का उल्लेख करते हैं, किन्तु उनका कोई गद्य-ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ है। कुछ उपलब्ध शिलालेखों से गद्य-काव्य का प्रचार एवं प्रसार स्पष्ट लक्षित होता है। रुद्रदामन के शिलालेख (१५० ई०) में अलंकृत गद्य-शैली का प्रयोग हुआ है। गुप्तकालीन एक शिलालेख (४०० ई०) ऐसी शैली में रचित उपलब्ध हुआ है, जिसकी तुलना बाण की गद्य-शैली से हो सकती है। इस प्रमाणों के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि गद्य-काव्य की कला का प्रचार दण्डी, सुबन्धु और बाण से कई शताब्दी पूर्व से रहा होगा, किन्तु इन कलाकारों ने अपने अनुपम तथा उत्कृष्ट गद्य-काव्यों के प्रभाव से अपने पूर्ववर्ती लेखकों को ऐसा आच्छादित कर दिया कि उनमें से बहुतों के नाम भी उपलब्ध नहीं होते। दण्डी, सुबन्धु और बाण गद्य-काव्य के विकास-काल की चरमोन्नति के प्रतिनिधि लेखक हैं। इनसे पूर्व दीर्घकाल तक

१—'लुवाख्यायिखेभ्यो वहुलम्', 'आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च—वार्त्तिक।'

२—'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' वहुलं लुग्वक्तव्यः। वासवदत्ता सुमनोत्तर। न च भवति। भैमरथी। महाभाष्य ४।३।८७

३—पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्य-बन्धो नृपायते॥ हर्षचरित।

साहित्य के इस अङ्ग का अभ्यास होता रहा होगा, यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं। वररुचिकृति 'चारुमती' रामिल सोमिलकृत 'शूद्र-कथा'[१] तथा श्रीपालिकृत 'तरङ्गवती[२]' इस कथन की पुष्टि करते हैं। यद्यपि ये लेखक और ये ग्रन्थ हमारे लिये केवल नाम मात्र ही हैं, तथापि वे गद्य-काव्य की उत्तरोत्तर वृद्धि और विकास के परिचायक हैं।

कथा और आख्यायिका—संस्कृत गद्य-साहित्य के प्रधान रूप से दो विभाग किये गये हैं—'कथा' और 'आख्यायिका'। दण्डी[३] के अनुसार इनमें निम्नलिखित भेद होते हैं—(१) कथा कविकल्पित होती है, आख्यायिका ऐतिहासिक इतिवृत्त पर अवलम्बित[४]। (२) कथा में वक्ता स्वयं नायक अथवा अन्य कोई रहता है; आख्यायिका में नायक स्वयं वक्ता होता है। आख्यायिका को हम एक प्रकार से आत्म-कथा कह सकते हैं। (३) आख्यायिका का विभाग अध्यायों में किया जाता है, जिन्हें उच्छ्वास कहते हैं, तथा उसमें वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्द के पदों का समावेश रहता है, पर कथा में नहीं। (४) कथा में कन्याहरण, संग्राम, विप्रलंभ, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि विषयों का वर्णन रहता है, पर आख्यायिका में नहीं। (५) कथा में लेखक किसी अभिप्राय से कुछ ऐसे विशेष शब्दों (catch words) का प्रयोग करता है जो कथा और आख्यायिका में भेद स्थापित करते हैं।

उपर्युक्त नियमों का एकांततः पालन संस्कृत गद्य-लेखकों ने नहीं

१—तौ शूद्रककथाकारौ वन्द्यो रामिलसौमिलौ।
काव्यं ययोर्द्वयोरासीदर्धनारीश्वरोपमम्॥ जल्हण

२—'पुण्या पुनीत गंगेव गा तरंगवती कथा'—तिलकमंजरी

३—काव्यादर्श १।२३-३०

४—'आख्यायिकोपलब्धार्था', 'प्रबन्धकल्पना कथा'—अमरकोश १।६।५,६

किया है। दण्डी स्वयं कहते हैं कि कथा-आख्यायिका में कोई महत्त्व का भेद नहीं। इतना ही समझ लेना पर्याप्त होगा कि ये गद्य-काव्य के दो नाम मात्र हैं।

दण्डी

गद्य-काव्य के लेखकों में सबसे प्राचीन कृतियाँ महाकवि दण्डी की उपलब्ध होती है। 'शार्ङ्गधरपद्धति' में राजशेखर के नाम निम्न-लिखित श्लोक उद्धृत किया गया है—

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥

इस कथन के अनुसार दण्डी ने तीन ग्रन्थों की रचना की। इनमें से दो काव्यादर्श और दशकुमारचरित हैं। काव्यादर्श अलंकार शास्त्र का ग्रंथ है तथा दशकुमारचरित गद्य-काव्य है। काव्यादर्श में गद्य-काव्य की शैली एवं कथावस्तु के सम्बन्ध में जिन नियमों का विधान किया गया है, उनका सर्वथा पालन दशकुमारचरित में नहीं देख पड़ता। अतः कुछ विद्वानों की धारणा है कि उक्त दोनों कृतियाँ दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की लेखनी से प्रसूत हैं। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि दण्डी ने दशकुमारचरित की रचना अपने साहित्यिक जीवन के प्रभातकाल में की, तथा काव्यादर्श की रचना प्रौढ़ प्रतिभा की प्राप्ति के पश्चात्। दण्डी की तीसरी रचना के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि दण्डी की तृतीय रचना छन्दोविचिति या कलापरिच्छेद है, क्योंकि काव्यादर्श[१] में इन नामों का उल्लेख है। पर उक्त दोनों नाम छन्दःशास्त्र सम्बन्धी किसी भी ग्रंथ के हो सकते हैं। पिशेल ने निम्नलिखित दो आधारों पर

१—१।२४, ३।१७१

मृच्छकटिक को दण्डी की तीसरी रचना सिद्ध करने का प्रयास किया है—(१) 'लिम्पतीव तमोङ्गानि' वाला प्रसिद्ध पद्य काव्यादर्श (२।२२६) तथा मृच्छकटिक (१।३४) दोनों में पाया जाता है। (२) मृच्छकटिक तथा दशकुमारचरित का सामाजिक चित्रण एक-सा है। अतः दोनों दण्डी का रचनायें हैं। परन्तु भास के नाटकों की खोज के उपरांत पहला तर्क निराधार हो जाता है तथा दूसरे तर्क में भी औचित्य नहीं देख पड़ता। कुछ पण्डितों ने 'मल्लिका-मारुत' नामक नाटक को दण्डी की रचना माना है। किन्तु यह नाटक मालाबार प्रान्त के उद्दण्ड रङ्गनाथ (१५०० ई०) की रचना स्वीकृत हो चुका है[1]। भोजदेव ने 'द्विसन्धान-काव्य' का दण्डी की रचना के रूप में उल्लेख किया है[2]। सन् १९२४ में अवन्ति सुन्दरी कथा नामक एक अपूर्ण गद्य-काव्य प्रकाशित हुआ है। इसके सम्पादक एम० आर० कवि महोदय ने इसे दण्डी की रचना माना है[3]। अवन्तिसुन्दरीकथा और दशकुमारचरित के कथानकों में समानता है। अन्तर केवल शैली में है। अवन्तिसुन्दरी कथा की प्रमाणिकता में कोई सन्देह नहीं, क्योंकि काव्यादर्श की जंघालकृत टीका में अवन्तिसुन्दरी नामक आख्यायिका का उल्लेख किया गया है। अतः अवन्तिसुन्दरी-कथा को ही विद्वानों ने दण्डी की तीसरी रचना माना है।

दण्डी के आविर्भावकाल के विषय में बहुत मतभेद है। ९वीं शताब्दी के ग्रन्थों में दण्डी का उल्लेख पाया जाता है। डा० बार्नेट[4] का कथन है कि सिंहाली भाषा के अलङ्कार-ग्रंथ 'सिय-बस-लकर' (स्वभाषालङ्कार) की रचना काव्यादर्श के आधार पर की गई है। इसके

१—Keith : Sanskrit Drama, p. 237.

२—उदारमहिमारामः प्रजानां हर्षवर्धनः।
धर्मप्रभव इत्यासीत ख्यातो भरतपूर्वजः॥

३—Pro. of Or. Conf. 1922, pp. 193–201.

४—J. R. A. S. 1906, p. 841.

रचयिता राजा सेन प्रथम का समय ८४६-८६६ ई० था। ८१४ ई० कन्नड़ी अलङ्कार-ग्रंथ 'कविराजमार्ग' में भी काव्यादर्श की यथेष्ट छाप देख पड़ती है। अतः दण्डी ८०० ई० पहले ही हुए होंगे।

काव्यादर्श के कुछ पदों में कालिदास का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है[1]। अतः दण्डी कालिदास के बाद के हैं। इसके अतिरिक्त काव्यादर्श में पाँचवीं शताब्दी के राजा प्रवरसेन-रचित 'सेतुबन्ध' नामक प्राकृत काव्य का उल्लेख है। अतएव दण्डी का आविर्भाव-काल ५००-८०० ई० के बीच प्रतीत होता है।

दण्डी बाण के पहले हुए थे या बाद में, इस विषय में मतभेद है। पीटरसन और याकोबी की सम्मति में काव्यादर्श के एक पद[2] में 'कादम्बरी' के शुकनासोपदेश की झलक मिलती है। दण्डी ने बाण और मयूर की प्रशंसा की है[3]। अवन्तिसुन्दरीकथा में कादम्बरी का वर्णन बाण की प्रसिद्ध कथा से मिलता-जुलता है। डा० बेलवेलकर[4] ने दण्डी का समय सातवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना है। कुछ विद्वान् अवन्तिसुन्दरीकथा के आधार पर दण्डी को भारवि का प्रपौत्र मान-कर उनका उक्त समय ही निर्धारित करते हैं।

किन्तु दण्डी की शैली के अध्ययन से वे बाण के पूर्ववर्ती प्रतीत

१—'लक्ष्म लक्ष्मीं तनोतीति प्रतीतं सुभगं वचः'—दण्डी
'मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति'—कालिदास

२—अरत्नालोकसंहार्यमवार्यं सूर्यरश्मिभिः।
दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः॥ काव्यादर्श २।१९७
केवलं च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्। कादम्बरी

३—भिन्नतीक्ष्णमुखेनापि चित्रं बाणेन निर्व्यथः।
व्यवहारेषु जहौ लीलां न मयूरः………॥

४—Notes on काव्यादर्श pp. 176-77.

होते हैं। दशकुमारचरित की सरल एवं प्रासादिक शैली बाण की शैली से प्रभावित हुई नहीं जान पड़ती। यदि दण्डी बाण के परवर्ती होते तो उनकी शैली बाण की शैली के समान श्लेष और वक्रोक्ति जैसे अलंकारों से अवश्य आक्रान्त होती। इसके अतिरिक्त दशकुमार-चरित का भौगोलिक[१] और राजनीतिक चित्रण हर्षवर्धन के पूर्व के भारत की ओर संकेत करता है। इसलिये दण्डी का स्थिति काल ६०० ई० के लगभग प्रतीत होता है।

काव्यादर्श और दशकुमारचरित के आधार पर मालूम होता है कि दण्डी दक्षिणात्य थे और विदर्भ देश के निवासी थे। काव्यादर्श में उन्होंने महाराष्ट्री प्राकृत तथा वैदर्भी शैली की प्रशंसा की है। दशकुमारचरित में कलिंग और आंध्र देशों के उल्लेख से, 'कावेरी-तीरपत्तन' जैसे शब्दों के प्रयोग से तथा दक्षिण में प्रचलित सामाजिक एवं पारिवारिक प्रथाओं के वर्णन से भी उनका दाक्षिणात्य होना प्रमाणित होता है। दशकुमारचरित के अवलोकन से पता चलता है कि दण्डी एक सम्पन्न व्यक्ति थे तथा उन्होंने सभी प्रकार के सांसारिक अनुभव प्राप्त किए थे।

दशकुमार-चरित का वर्तमान उपलब्ध स्वरूप तीन भागों में विभाजित हैं—(१) पूर्वपीठिका, जिसमें ५ उच्छ्वास हैं, (२) दशकुमार-चरित जिसमें ८ उच्छ्वास हैं तथा (३) उत्तरपीठिका। इनमें से केवल मध्य भाग अर्थात् दशकुमारचरित ही दन्डी की वास्तविक रचना माना जाता है। इतना तो स्पष्ट है कि आरम्भ में दण्डी ने सम्पूर्ण दशकुमार-चरित की रचना स्वयं की होगी, किन्तु किसी कारणवश इस ग्रन्थ के आदि तथा अन्त भाग नष्ट हो गए। इस पर दण्डी के किसी भक्त ने, जो मूल ग्रन्थ की शैली एवं कथावस्तु से अवगत रहा होगा, पूर्व तथा

१—Collins : The Geographical Data of the रघुवंश and दशकुमारचरित (1907) p. 46. ४-१।३४, ४१, ४२।

उत्तर पीठिका जोड़कर ग्रन्थ को पूर्ण बना दिया। एम० आर० कवि महोदय ने एक और कारण सुझाया है। उनके अनुसार १२५० ई० के लगभग दण्डी के मूलग्रन्थ का तेलगू में अनुवाद हुआ था। समग्र मूलग्रन्थ के उपलब्ध न होने पर किसी कुशल लेखक ने बाद में नष्ट हुये भागों का तेलगू से संस्कृत में पुनः रूपान्तर कर दिया।

दशकुमारचरित में दस राजकुमार अपने-अपने पर्यटनों, विचित्र अनुभवों तथा पराक्रमों का मनोरंजक वर्णन करते हैं। इसे 'धूर्तों का रोमांस' कहना अनुचित न होगा। छल-कपट, मार-काट तथा चोरी-जारी से ओत-प्रोत यह एक सजीव कृति है। व्यंग और विनोद का पुट देकर उसमें तत्कालीन समाज का बड़ा ही गोचर चित्रण किया गया है। साहस-प्रेमी राजकुमार किस प्रकार उचित अनुचित का विचार छोड़ अपने कार्य की सिद्धि के लिए प्रयत्न करते रहे हैं, इसका वर्णन एक अनूठी व्यंगात्मक शैली में किया गया है। दम्भी, तपस्वी, कपटी ब्राह्मण, धूर्त कुट्टनी, व्यभिचारिणी स्त्रियाँ तथा हृदयहीन वेश्यायें—इन सबका खूब भंडाफोड़ किया गया है। दशकुमारचरित में जहाँ कथानक विचित्र है वहाँ उसके अनुरूप वर्णनशैली भी सरस एवं प्रवाहपूर्ण है। 'कहीं विलास का विकास हृदय को उन्मत्त कर रहा है; कहीं सौंदर्य का सौरभ अन्तरात्मा को बेसुध बना रहा है; कहीं हास की कोमल लहरी मानस तल को अनूठे ढंग से तरङ्गित कर रही है।' दण्डी का चरित्र-चित्रण विशद है। उनके सभी पात्र सजीव और वास्तविक प्रतीत होते हैं। समाज के उच्च और निम्न वर्ग का वे जीता जागता चित्र उपस्थित कर देते हैं। दशकुमारचरित से उस समय की प्रचलित अनेक सामाजिक प्रथाओं का भी परिचय मिलता है। दण्डी का रचना-कौशल भी दर्शनीय है। कथा की रोचकता में अभिवृद्धि करने के लिये वे कहीं शिष्ट-हास्य, कहीं मधुर व्यंग और कहीं गम्भीर वर्णन का आश्रय लेते हैं। कहीं वर्णन विस्तार है तो कहीं लघु

कथाएँ। कथाओं का क्रम प्रशंसनीय है। वर्णनप्रवाह दीर्घ विषयान्तरों से आक्रान्त नहीं होता। मुख्य कथा के स्रोत में अवांतर कथाएँ अवरोध नहीं उपस्थित करतीं। व्याकरण की दृष्टि से भी दशकुमारचरित निर्दोश है। इसमें लिट् और लुङ् लकार के प्रयोग पाणिनीय नियमों के अनुसार हैं, जैसा सुवन्धु की वासवदत्ता में नहीं देख पड़ता। विशद चरित्र-चित्रण नैसर्गिक शैली, बुद्धि विलास, शिष्ट परिहास, विषयांतरों की न्यूनता, रसानुकूल शब्दविन्यास तथा यथार्थ और आदर्श का सुन्दर सामंजस्य आदि विशेषताएँ दशकुमारचरित को संस्कृत गद्य-साहित्य में विशिष्ट स्थान प्रदान करती हैं।

दण्डी की शैली—दण्डी शुभग एवं मनोरम वैदर्भी गद्य-शैली के आचार्य कहे जा सकते हैं। उनकी वर्णन-प्रणाली सरल और प्रासादिक है। वे अपनी भाषा को अलंकारों के आडम्बर से चित्र-विचित्र बनाने का प्रयास नहीं करते। इसी कारण वह नैसर्गिक प्रवाह पूर्ण, मँजी हुई और मुहावरेदार हैं। दण्डी के गद्य में अपनी विशेपता है। सुवंधु के गद्य के समान न तो वह 'प्रत्यक्षरश्लेपमय' है और न वाण के गद्य की भाँति 'सरसस्वरवर्णपद' से सुशोभित साहित्यिक गद्य का आदर्श है। वह तो बहुत कुछ प्रतिदिन के कार्य में आने वाला 'व्यावहारिकगद्य' का नमूना है। वाक्य प्रायः छोटे-छोटे हैं। वाक्यविन्यास आयासजनक नहीं, अपितु ओजस्वी, ललित एवं सुव्यक्त हैं। अर्थ की स्पष्टता, रस की सम्यक अभिव्यक्ति, शब्दविन्यास की चारुता तथा कल्पना की उर्वरता दण्डी की शैली के विशेप गुण हैं। दण्डी के पद-लालित्य की बड़ी प्रशंसा है—'दण्डिनः पदलालित्यम्'। अनुप्रासमय तथा मनोरम पदविन्यास में वे कुशल हैं, जैसे 'अयुग्मशरः शरशयने शाययिष्यति,' असत्येनास्य नास्थं संसज्यते', 'अनेक स्थानेकआतंकश्चिरं चिकित्कैरसंहार्यः संहतः', 'स पुण्यैः कर्मभिः प्रायः पुरुपायुपं पुनरपुण्येन प्रजानामगण्यतामरेपु' इत्यादि। दण्डी अपने शब्दशोधन में तथा लौकिक सत्यों को ओजःपूर्ण भाषा में व्यक्त करने में कुशल हैं, जैसे—'स्वदेशो देशांतरमिति नेयं गणना

विदग्धस्य पुरुषस्य', 'आत्मानमात्मनाऽनवसाद्यैवोद्धरन्ति सन्तः', 'न ह्यलमति-निपुणोऽपि पुरुषो नियतिलिखितां लेखामतिक्रमितुम्', 'इह जगति हि न निरीहं देहिनं श्रियः संश्रयन्ते', जीवितं हि नाम जन्मवतां चतुःपञ्चाण्यहानि'। यत्र-तत्र दण्डी अवश्य ही भाषा को अलंकृत करना नहीं चूकते। उदाहरणार्थ, सोती हुई अम्बालिका के वर्णन को लीजिये अथवा सत्रहवें उच्छ्वास को, जहाँ वे ओष्ठ्य वर्णों का प्रयोग ही नहीं करते। किन्तु उनके वाक्यालंकार परिमित मात्रा में ही प्रयुक्त होते हैं और वे सर्वत्र मनोहर एवं उपयुक्त हैं, न कि दुरूह और अनवरत। सुन्दर, सुभग एवं सुबोध संस्कृत गद्य-लेखक के नाते दण्डी हमारी प्रशंसा के पात्र तथा अध्ययन के आदर्श हैं। एक भारतीय आलोचक ने दण्डी को ही एक मात्र कवि बताया है— 'कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः'। एक दूसरे आलोचक ने कहा है कि वाल्मीकि के प्रादुर्भाव के बाद 'कवि' शब्द का एक वचन में प्रयोग हुआ करता था, व्यास के बाद द्विवचन में (कवी) तथा दण्डी के बाद बहुवचन में (कवयः) होने लगा—

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥

'मधुराविजय' महाकाव्य की रचयित्री गङ्गादेवी ने दण्डी को उच्चकोटि का कवि स्वीकार किया है—

आचार्यदण्डिनो वाचामाचान्तामृतसंपदाम्।
विकासो वेधसः पत्न्या विलासमणिदर्पणम्॥

सुबन्धु

'वासवदत्ता' नामक गद्य-काव्य के रचयिता सुबन्धु का स्थितिकाल

अनिश्चित है। कुछ विद्वानों[1] की धारणा है कि सुबन्धु बाण के परवर्ती थे। सुबन्धु कई शब्दों, पदों[2] तथा घटनाओं के लिए बाण के ऋणी हैं। वासवदत्ता में 'इन्द्रायुध' शब्द का प्रयोग[3] चन्द्रापीड के उसी नाम के घोड़े की ओर संकेत करता है। महाश्वेता और कादम्बरी अपने-अपने प्रेमियों की मृत्यु पर प्राण दे देने का संकल्प करती हैं, किन्तु आकाश-वाणी उन्हें ऐसा करने से रोकती है। 'वासवदत्ता' में भी अपनी प्रेमिका के खो जाने पर कंदर्पकेतु की ऐसी ही स्थिति दिखाई पड़ती है। साथ ही बाण ने हर्षचरित में उस 'वासवदत्ता' का संकेत किया है, जिसका उल्लेख पतंजलि के ग्रंथ में है। इन आधारों पर कुछ विद्वान् सुबन्धु का स्थितिकाल बाण के बाद मानते हैं।

उक्त मत के समर्थन में कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। टीकाकार भानुचन्द्र (१६०० ई०) के अनुसार बाण ने अपनी 'कादम्बरी' को 'अतिद्वयी कथा' कह कर 'वासवदत्ता' और 'बृहत्कथा' की ओर संकेत किया है। म० म० काणे[4] महोदय ने सप्रमाण दिखाया है कि बाण सुबन्धु के परवर्ती थे तथा उन्होंने हर्षचरित में सुबन्धुकृत 'वासवदत्ता' का ही उल्लेख[5] किया है—(१) वामन (८०० ई०) ने अपनी 'काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति' में सुबन्धु की 'वासवदत्ता' और बाण की 'कादम्बरी' से उदाहरण दिये हैं। अतः ये दोनों ७५० ई० के पूर्व

१—M. Krishnamachariar : Cl. Skt. Lit. p. 469.

२—जैसे, 'किं बहुना', 'देवः प्रमाणम्', 'अचिन्तयच्च', आसीच्चास्य मनसि'।

३—वज्रेणेवेन्द्रायुधेन मनोजवनाम्ना तुरगेण सह नगरान्निर्जगाम।

४—Introduction to his edn. of कादम्बरी, pp. 17-18

५—कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पांडुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्॥

हुए होंगे। (२) कविराज (१२०० ई०) ने 'राघवपाण्डवीय'[१] में सुबन्धु, बाणभट्ट और स्वयं को वक्रोक्ति में कुशल बताया है। ऐसा जान पड़ता है कि कविराज ने इन तीनों नामों का स्थितिकाल के अनुसार यथाक्रम उल्लेख किया है। (३) वाक्पतिराज के प्राकृत-काव्य 'गौडवहो'[२] (७३६ ई०) में सुबंधु की रचना का उल्लेख हुआ है, पर बाण का नहीं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि वाक्पतिराज के समय में सुबन्धु की पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी, पर बाण अभी तक अप्रसिद्ध ही थे। इस प्रकार सुबन्धु बाण के पूर्ववर्ती प्रमाणित होते हैं। मंख के 'श्रीकंठचरित'[३] में सुबन्धु और बाण की एक साथ प्रशंसा की गई है। ११६८ ई० के एक कन्नड़ी शिलालेख में सुबन्धु के काव्यकलाकौशल की प्रशंसा है।

सुबन्धुकृत वासवदत्ता के वर्णन में तथा भवभूतिकृत मालती के वर्णन में पर्याप्त साम्य[४] देख पड़ता है। जैसा कि पीछे दिखलाया जा

१—सुवंधुर्बाण भट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥ १।४१

२—भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अजन्स रहुआरे।
सोवंधवे अ वंधम्मि हारियन्देअ आणन्दो ॥८००

३—मेण्ठे स्वर्द्विरदाधिरोहिणि वशं याते सुवन्धौ विधेः।
शान्ते हन्त च भारवौ विघटिते बाणे विषादस्पृशः ॥ २।५३

४—हृदयं विलिखितमिव उत्कीर्णमिव प्रत्युप्तमिव कीलितमिव...वज्रलेप-घटितमिव ...मर्मान्तरस्थितमिव...कन्दर्पकेतुं मन्यमाना।
—वासवदत्ता (श्रीरंगम् संस्करण पृष्ठ १६१-२)

लीनेव प्रतिबिम्बितेव लिखितेवोत्कीर्णरूपेव सा
प्रत्युप्तेव च वज्रलिम्पघटितेवान्तर्नि खातेव च।
सा नश्चेतसि कीलितेव विशिखैश्चेतोभुवः पंचभिः
(चिन्तासन्ततितंतुजालनिबिडस्यूतेव लग्ना प्रिया) ॥ मा० मा० ५।१०

चुका है, भवभूति ने कालिदास के ग्रंथों से अनेक शब्द तथा भाव लिये हैं। सम्भव है कि मालती के वर्णन में वे सुबन्धु से प्रभावित हुए हों। इस अनुमान के आधार पर सुबन्धु भवभूति (७०० ई०) के पहले माने जा सकते हैं।

सुबंधु ने अपनी कृति में एक रमणी का इस प्रकार वर्णन किया है—'न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपां, बौद्धसंगतिमिवालंकारभूषिताम्।' स्वर्गीय कीथ महोदय के मतानुसार सुबंधु इस स्थल पर श्लेष द्वारा नैयायिक उद्योतकर तथा बौद्धधर्मकीर्ति के 'बौद्धसंगत्यलंकार' नामक ग्रंथ की ओर संकेत करते हैं[1]। इन लेखकों का समय ७वीं शताब्दी का प्रारम्भ था[2]। इसके अतिरिक्त जिनभद्र-क्षमाश्रमण-कृत 'विशेषावश्यक-भाष्य' (६०८ ई०) में 'वासवदत्ता' और 'तरंगवती' का उल्लेख हुआ है[3]। अतएव सुबंधु का समय ६०० ई० या इससे कुछ पूर्व माना जा सकता है।

वासवदत्ता ही सुबंधु की एक मात्र उपलब्ध रचना है। सुबंधु की यह कृति संस्कृत गद्य-काव्य के उस रूप का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें कथानक अति लघु रहता है, वर्णन विस्तार का प्राधान्य होता है तथा पांडित्य कल्पना का स्थान ले लेता है। राजकुमार कन्दर्पकेतु स्वप्न में अपनी भावी प्रियतमा के दर्शन करता है और स्मरपीड़ित हो उसकी खोज में निकल पड़ता है। अतिसंक्षेप में 'वासवदत्ता' का यही कथानक है। किन्तु इस कथा की विशेषता कथानकमें नहीं, वरन् नायक-नायिका के रूप-सौन्दर्य के सूक्ष्म वर्णन में, उनकी गुणावली के गान में, उनकी तीव्र

१—Cl. Skt. Lit. p. 77.

२—Keith : J.R.A.S. 1914, pp. 1102 ff.

३—जह वा निद्दिट्ठवसा वासवदत्ता तरंगवइयाइं।
तह निद्देसग वसओ लोए मणुरक्खवाओ त्ति॥

विरहातुरता, मिलनकांता तथा संयोग-दशा के चित्रण में निहित है। सुबंधु के विषय में श्री आनंदवर्धन का यह कथन पूर्णतया चरितार्थ होता है कि कविगण बहुधा कथावस्तु के प्रवाह तथा रस की अभिव्यक्ति का ध्यान नहीं रखते और अपना शब्द कौशल दिखाने में ही मग्न रहते हैं—'दृश्यन्ते च कवयोऽलङ्कारनिबन्धनैकरसा अनपेक्षितरसाः प्रबन्धेषु।'[1] सुबन्धु की कृति में विषयान्तरों का बाहुल्य है। उनके द्वारा वे अपने अलङ्कार-कौशल एवं पाण्डित्य का प्रदर्शन करते हैं। १२० पंक्तियों के एक वाक्य में वासवदत्ता के विलास-विभ्रम का अतिरंजित चित्रण किया गया है। सुबन्धु की रचना में जहाँ उनके वर्णन-विस्तार तथा शब्द-भण्डार का परिचय स्थल-स्थल पर मिलता है, वहाँ कल्पना तथा चरित्र-चित्रण का अभाव खटकता है।

सुबन्धु की शैली—सुबन्धु की गद्य-शैली अतिशयोक्ति, अनुप्रास तथा समास-प्रधान गौड़ी शैली का उदाहरण है। उनकी यह गर्वोक्ति सत्य है कि मैंने एक ऐसे विलक्षण काव्य की रचना की है, जिसके प्रत्येक अक्षर में श्लेष है[2]। उनकी रचना श्लेष तथा विरोधाभास का ऐसा दुर्गम महाकान्तर है कि उसमें वास्तविक काव्य-सौंदर्य को ढूँढ़ निकालना कठिन हो जाता है। अलङ्कारों, दीर्घकाय समासों तथा पौराणिक संकेतों के प्रयोग में वे औचित्य की सीमा का अतिक्रमण पर बैठते हैं और इस कारण रस का आस्वादन दुर्लभ हो जाता है। दण्डी में वीरता, विचित्रता तथा शृङ्गारिकता का स्निग्ध एवं रमणीय चित्रण है, किन्तु सुबन्धु चित्र-काव्य लिखने के फेर में पड़ कर इन रम्य भावों का सफल अङ्कन नहीं कर सके हैं। स्थान-स्थान पर नये रंगों को भर कर उन्होंने प्रत्येक चित्र को अतीव विचित्र बना डाला है। उनमें न तो

१—ध्वन्यालोक (नि० सा० १९११) पृ० १५१

२—प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपञ्चविन्यासवैदग्ध्यनिधिप्रबन्धम्।
सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः॥

दण्डी का हास, ओज और वैचित्र्य है और न बाण की सी कल्पना-शक्ति और वर्णन प्रतिभा ही। उनकी समास प्रचुर भाषा में सौष्ठव, प्रसाद और माधुर्य कम है, आडम्बर, कृत्रिमता और असंगति अधिक है।

सुबन्धु की चित्रोपम एवं अलंकृत गद्यशैली की आलोचना करते समय यह स्मरण रखना होगा कि उनके कथानक के लिये सरल और अलंकाररहित शैली अनुपयुक्त सिद्ध होती है। शृङ्गारिक वैभव के चित्रण में, तीव्र मनोराग की अभिव्यक्ति में एवं प्रभावोत्पादक वर्णन में पंचतंत्र की सरल शैली सर्वथा अप्रासङ्गिक होती। यह दूसरी बात है कि सुबन्धु अलंकारों का मात्रातीत प्रयोग कर अपनी शैली के लालित्यमय प्रवाह की रचा नहीं कर सके हैं। एक ही क्रिया पर आश्रित त्रिपुलकाय वाक्य की रचना करने में सुबन्धु अद्वितीय हैं, साथ ही वे आवश्यकता होने पर छोटे-छोटे वाक्यों का भी, विशेषकर संवादों में प्रयोग कर सके हैं। उनके समासों में एक प्रकार का स्वरमाधुर्य तथा उनके अनुप्रासों में संगीत है। वामनभट्ट बाण ने सुबन्धु की इस प्रकार प्रशंसा की है—

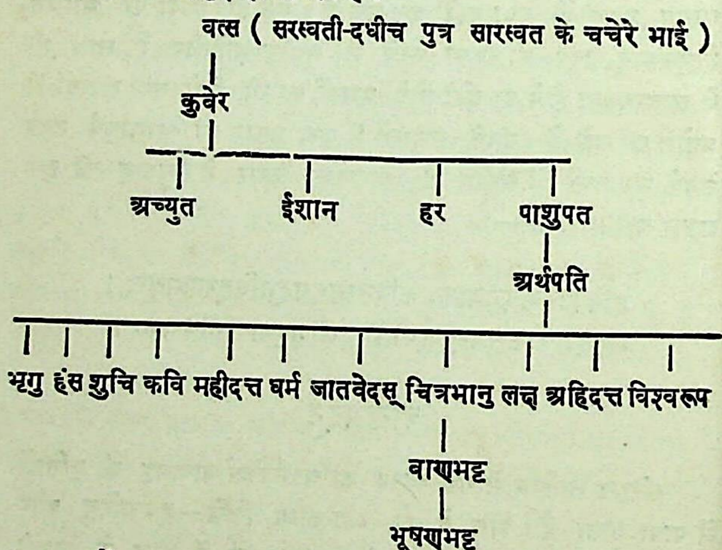
प्रतिकविभेदनबाणः कवितातरुगहनविहरणमयूरः।
सहृदयलोकसुबन्धुर्जयति श्रीभट्टबाणकविराजः॥

बाणभट्ट

संस्कृत साहित्य में गद्य काव्य का चरमोत्कर्ष बाणभट्ट की कृतियों में पाया जाता है। बाण ने दो गद्य-काव्य लिखे—हर्षचरित और कादम्बरी। हर्षचरित के पहले तीन उच्छ्वासों में बाण ने अपनी आत्म-कथा लिखी है। कादम्बरी के प्रारम्भ में भी उन्होंने अपने वंश

का संक्षिप्त परिचय दिया है। बाण ने अपने कुल[1] की पौराणिक उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन किया है। उनके वंश के प्रवर्तक दधीच तथा सरस्वती के पुत्र सारस्वत के चचेरे भाई वत्स थे। वत्स के कुल में कुबेर का जन्म हुआ, जिनका समय ४५०-४८० ई० लगभग प्रतीत होता है। कुबेर उद्भट विद्वान् थे। कादंबरी[2] में बाणभट्ट कहते हैं कि उनके घर पर ब्रह्मचारी लोग सतर्क होकर वेदगायन किया करते थे, क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं पिंजड़े में टँगे तोते या मैना पक्षी उन्हें टोक न दें। कुबेर के चार पुत्र हुए—अच्युत, ईशान, हर और पाशुपत। पाशुपत बाण के प्रपितामह थे। कादम्बरी में बाण ने इनका उल्लेख नहीं किया है। इनके पुत्र अर्थपति हुए, जिनके ग्यारह पुत्रों में से एक

१—बाण का वंशवृक्ष इस प्रकार है :—



२—जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पंजरवर्तिभिः शुकैः।
निगृह्यमाणा बटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शंकिताः ॥१२

बाण के पिता चित्रभानु थे। बाण की माता का नाम राज्यदेवी था। बाण के दो पारशव (शूद्र स्त्री से उत्पन्न) भाई—चित्रसेन और मित्रसेन—तथा चार चचेरे भाई—गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल—थे। बाण की बाल्यावस्था में ही उनकी माता का देहान्त हो गया। तब उनके पिता ने उनका माता की भाँति लालन-पालन किया। वत्स के समय से ही बाण के पूर्वजों का निवासस्थान प्रीतिकूट नामक ग्राम था, जो हिरण्यवाह अथवा शोण नद के पश्चिमी तट पर स्थित था। उसी के समीप मल्लकूट और यष्टिगृह नाम के दो ग्राम थे, जिनके उपरान्त हर्ष का साम्राज्य आरम्भ होता था।

बाण के उपनयन के पश्चात् उनके पिता अकाल ही में कालकवलित हो गये। इस समय बाण की आयु १४ वर्ष की थी। किसी सुयोग्य अभिभावक के न रहने के कारण इनका यौवन-काल कुछ अव्यवस्थित रहा। वे अपने अंतरङ्ग मित्रों के साथ पर्यटन के लिये निकल पड़े। अपने प्रवास में उन्होंने प्रचुर अनुभव प्राप्त किया, कई राजदरबारों में वे गये, अनेक गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त की, विद्वानों से वार्तालाप किया तथा अन्त में परिपक्व बुद्धि, सांसारिक अनुभव तथा उदार विचारों के साथ घर लौटे।

एक दिन राजा हर्षवर्धन के भाई कृष्ण के दूत ने आकर उन्हें एक पत्र दिया, जिसमें लिखा था कि कुछ लोगों ने महाराज के पास तुम्हारी शिकायत की है। अतः तुम्हें यहाँ पर शीघ्र आकर अपने को निर्दोष सिद्ध करना चाहिये। जब बाण राजदरबार में पहुँचे, तब सर्वप्रथम तो राजा ने उनकी अवहेलना की तथा अनयन्त्रित जीवन व्यतीत करने के लिये व्यंग किया—'महानयं भुजङ्ग'। बाण ने विनयपूर्वक अपनी कुलीनता तथा उच्च विद्याभ्यास की ओर राजा का ध्यान आकृष्ट किया तथा अपने पिछले कृत्यों के लिये पश्चात्ताप प्रकट करते हुए नया जीवन प्रारम्भ करने की इच्छा प्रकट की। कुछ ही दिनों में हर्ष ने उनके चरित्र एवं

विद्वत्ता से प्रसन्न हो उन पर कृपादृष्टि की तथा 'वश्यवाणीकविचक्रवर्ती' की उपाधि के सम्मानित किया।

कुछ समय बाद बाण अपने निवासस्थान को लौटे। वहीं उनके बंधु-बान्धवों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। सूचिबाण नामक सूत ने उन्हें दो आर्या गीत सुनाये, जिसमें सम्राट् हर्ष के जीवन की ओर मार्मिक संकेत था। उन्हें सुनकर बाण के चचेरे भाई उत्सुकतावश एक दूसरे की ओर ताकने लगे। उनमें से सबसे छोटे श्यामल ने साहस कर बाण से हर्षचरित सुनाने की प्रार्थना की।

इसके बाद बाण के जीवन का कोई वृत्तान्त उपलब्ध नहीं होता। हर्ष की मृत्यु (६४८ ई०) के बाद जब उनके राज्य में अराजकता फैल गई तो बाण सम्भवतः कन्नौज से अपने घर प्रीत-कूट लौट आये। हर्ष की मृत्यु हो जाने के कारण बाण अपने ग्रंथ हर्षचरित की समाप्ति के प्रति उदासीन हो गये। अपनी कादम्बरी कथा को समाप्त करने के पूर्व ही उनका देहावसान हो गया। इसकी समाप्ति उनके सुयोग्य पुत्र ने की। डा० बूलर[1] के अनुसार बाण के पुत्र का नाम भूषणबाण था। कुछ लोग उनका नाम भूषणभट्ट बतलाते हैं। कादम्बरी की कुछ हस्त-लिखित प्रतियों में 'पुलिन्द' अथवा 'पुलिन' नाम मिलता है[2]। धनपाल ने अपनी 'तिलकमंजरी'[3] में श्लेष द्वारा बाण के पुत्र का नाम 'पुलिंद' ही सूचित किया है।

१—Peterson's introduction to कादम्बरी p. 4.

२—S. R. Bhandarkar : Report on the search for Mss.; 1904-5, 1905-6, p. 34.

३—केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान्कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसंधान पुलिन्दकृतसंनिधिः॥ तिलकमंजरी २६

मातंगदिवाकर और मयूर नाम के दो अन्य कवि भी बाण के समकालीन बताये जाते हैं[1]।

स्थितिकाल—सम्राट् हर्षवर्धन के सभा-पण्डित होने के कारण बाणभट्ट का स्थितिकाल सरलतापूर्वक निश्चित किया जा सकता है। हर्ष का राज्याभिषेक अक्टोबर ६०६ ई० में हुआ तथा उनकी मृत्यु ६४८ ई० में हुई। ये तिथियाँ ताम्र दानपत्रों तथा ६२९ से ६४५ ई० तक भारत में भ्रमण करने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग के संस्मरणों के आधार पर स्वीकृत हो चुकी हैं[2]। अतः बाण का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

उस समय की पुष्टि बहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग प्रमाणों से भी होती है। रुय्यक ने अपने 'अलंकारसर्वस्व' (११५० ई०) में बाण के हर्षचरित का कई बार उल्लेख किया है। क्षेमेन्द्र (११५० ई०) ने अपनी रचनाओं में अनेक स्थलों पर बाण के नाम का उल्लेख किया है। रुद्रटकृत 'काव्यालङ्कार' के टीकाकार नमि साधु (१०६९ ई०) ने कादम्बरी और हर्षचरित को क्रमशः कथा तथा आख्यायिका का नमूना बताया है। भोज (१०२५ ई०) ने अपनी 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में एक स्थल पर बाण के पद्य की अपेक्षा उनके गद्य को अधिक उत्कृष्ट बताया है—याद्दग्गद्यविधौबाणः पद्यबंधे न तादृशः'। धनंजय (१००० ई०) के 'दशरूपक' में बाण का इस प्रकार उल्लेख हुआ है—'यथा हि महाश्वेतावर्णनावसरे भट्टबाणस्य'। आनन्दवर्धन (८५० ई०) के 'ध्वन्या-

---

१—अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातंगदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः॥ राजशेखर
सचित्रवर्णविच्छित्तिहारिणोरवनीश्वरः।
श्रीहर्ष इव सङ्घट्टं चक्रे बाणमयूरयोः। नवसाहसांकचरित

२—Peterson's intro. to कादम्बरी; V. A. Smith: Early Hist. of India; chap. 13.

लोक' में बाण की दोनों गद्य-कृतियों का उल्लेख हैं। वामन (८०० ई०) ने अपनी 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' में कादम्बरी के 'अनुकरोति भगवतो नारायणस्य' इन शब्दों को उद्धृत किया है। इस प्रकार बारहवीं शताब्दी से लगातार आठवीं शताब्दी के प्रमुख लेखकों ने बाण तथा उनकी कृतियों का स्पष्ट उल्लेख किया है। अतः सप्तम शतक के पूर्वार्द्ध में उनकी स्थिति मानने में कोई विप्रतिपत्तिं नहीं होनी चाहिये।

अन्तरङ्ग प्रमाणों से भी उक्त समय ही सिद्ध होता है। अपने हर्ष-चरित के प्रारम्भिक पद्यों में बाण ने इन कवियों एवं कृतियों का उल्लेख किया है—व्यास, वासवदत्ता, भट्टारहरिचन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेनकृत सेतुबंधु, भास, कालिदास, बृहत्कथा और आढ्यराज। इन कवियों में से कोई भी सातवीं शताब्दी के बाद में नहीं हुए। हर्ष की सभा में बाण का प्रवेश उनके शासनकाल में उत्तरार्ध में हुआ होगा। हर्ष-चरित में बाण हर्ष के उन पराक्रमों का वर्णन करते हैं जिनका संपादन हर्ष, बाण के मिलने के पहले कर चुके थे। इस वर्णन में दो स्थलों पर बाण ने लिखा है कि हर्ष ने अपना समस्त धन-वैभव ब्राह्मणों तथा बौद्ध भिक्षुओं को दान कर दिया था। ह्वेनसांग ऐसे एक अवसर पर ६४३ ई० में उपस्थित था। हर्ष से मिलने के समय बाण युवक ही रहे होंगे। उनकी युवावस्था की चपलताओं का पता राजा को लग चुका था तथा उनका हाल ही में विवाह भी हुआ था—'दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि।...का में भुजङ्गता...चापलेः शैशवमशून्यमासीत्'।

रचनाएँ—हर्षचरित तथा कादम्बरी के अतिरिक्त बाण की कुछ अन्य कृतियाँ भी उपलब्ध होती हैं। चण्डीशतक भगवती दुर्गा की स्तुति में १०० पद्यों की रचना है। पार्वतीपरिणय नामक नाटक को महामहोपाध्याय काणे[1] महोदय बाण की कृति मानते हैं, किन्तु

[1] Introduction to कादम्बरी pp. 23-24.

कीथ[1] उसे १९वीं शताब्दी के कवि वामनभट्ट बाण की रचना मानते हैं, 'नलचम्पू' के टीकाकारद्वय चण्डपाल और गुणविनयगणि लिखते हैं कि बाण ने मुकुटताड़ितक नामक नाटक की रचना की थी, पर यह अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा'[2] में बाण रचित एक पद्य को उद्धृत किया है जिसमें चन्द्रापीड की प्रेयसी कादम्बरी की विरहव्यथा का वर्णन है। सम्भव है कि बाण ने पद्य में भी कादम्बरी की कथा लिखी हो।

हर्षचरित बाण की प्रथम गद्य कृति है। जैसा कि बाण स्वयं कहते हैं[3], यह एक आख्यायिका है। इसमें आठ उच्छ्वास हैं। प्रथम तीन उच्छ्वासों में बाण की आत्मकथा वर्णित है तथा शेष में सम्राट् हर्ष का जीवनचरित्र। हर्षचरित में ऐतिहासिक विषय पर गद्य-काव्य लिखने का प्रथम वार प्रयास किया गया है। काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से भी हर्षचरित में कई विशेषतायें हैं। बाण की अद्भुत वर्णनाशक्ति का परिचय स्थान-स्थान पर मिलता है। प्रभाकरवर्धन के अन्तिम क्षणों का वर्णन ओज एवं कारुण्य को लिये हुए है। सती होने के पूर्व यशोवती जो उद्गार प्रकट करती है, वह अनन्यता, तेजस्विता एवं कारुण्य से परिपूर्ण हैं। छठे उच्छ्वास में सिंहनाद का उपदेश कादम्बरी के शुकनासोपदेश की कोटि का ही है। हर्ष सर्वत्र एक महान्

१—H. S. L. h. 315.

२—'यथा वा भट्टबाणस्य—
हारो जलार्द्रं वसनं नलिनीदलानि प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनांशुभासः।
यस्येन्धनानि सरसानि च चन्दनानि निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः॥ अत्र विप्रलम्भरभरभग्नधैर्यायाः कादंबर्या विरहव्यथा-वर्णना'।

३—तथापि नृपतेर्भक्त्या भीतो निर्वहणाकुलः।
करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम्॥ हर्षचरित

सम्राट् के रूप में हमारे संमुख आते हैं। वे निर्भीक और साहसी, कर्तव्य-परायण और स्नेहमय हैं। राज्यवर्धन भी आज्ञाकारी पुत्र, स्नेहशील भाई और शूर योद्धा हैं। सोड्ढल ने हर्षचरित की इस प्रकार प्रशंसा की है—

बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्य।
शक्तिं न केऽत्र कविताखमदं त्यजन्ति ॥

कादम्बरी बाणभट्ट की, अथवा यों कहिए, समस्त संस्कृत साहित्य की सर्वोत्कृष्ट गद्य-रचना है। उसकी कथा का सार इस प्रकार है— विदिशा के राजा शूद्रक की सेवा में एक चाण्डाल-कन्या अपना परम मेधावी शुक भेंट करती है। यह शुक राजा को विंध्यारण्य में अपने जन्म से लेकर महर्षि जाबालि के आश्रम में पहुँचने तक का वृत्तान्त सुनाता है। जाबालि मुनि से शुक अपने पूर्वजन्म का हाल सुनता है। जाबालि द्वारा वर्णित कथा इस प्रकार थी—

उज्जयिनी के राजा तारापीड तथा रानी विलासवती ने तपस्या द्वारा चन्द्रापीड नामक पुत्ररत्न प्राप्त किया। विद्याध्ययन की समाप्ति के बाद राजकुमार चन्द्रापीड अपने पिता के सचिव शुकनास के पुत्र और अपने अभिन्न मित्र वैशम्पायन के साथ दिग्विजय के लिये निकल पड़े। एक बार वह अपने घोड़े इन्द्रायुध पर एक किन्नर युगुल का पीछा करते हुए आच्छोद नामक एक परम रमणीय सरोवर पर आ पहुँचे। वहाँ राजकुमार का महाश्वेता नामक एक शुभ्रवर्ण तपस्विनी युवती से परिचय हुआ। महाश्वेता एक गन्धर्व राजकन्या थी, जिसके हृदय में पुण्डरीक नामक तपस्वी युवक को देख उसके प्रति प्रेमाङ्कुर जागरित हो उठा था। पर मिलन के पूर्व ही पुण्डरीक की स्मरपीड़ा से मृत्यु हो गई। इस पर महाश्वेता तपस्विनी का व्रत धारण कर भावी मिलन की आशा में आच्छोद सरोवर के किनारे रहने लगी। महाश्वेता की सखी कादम्बरी ने भी कौमार्य व्रत धारण करने का

निश्चय किया। महाश्वेता चन्द्रापीड को साथ लेकर कादम्बरी को समझाने जाती है। प्रथम साक्षात्कार में ही दोनों परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। पर उज्जैन से पिता के बुला लेने पर चन्द्रापीड को शीघ्र ही लौट जाना पड़ता है। वह वैशम्पायन को सेना के साथ लौट आने के लिये कह जाते हैं। बहुत समय व्यतीत होने पर भी जब वैशम्पायन नहीं लौटा तब चन्द्रापीड उसकी खोज में आच्छोद सरोवर जाते हैं। वहाँ महाश्वेता उन्हें बताती है कि वैशम्पायन मुझ पर आसक्त हो मुझसे प्रेम प्रस्ताव करने लगा, इस पर मैंने उसे शुक हो जाने का शाप दे दिया। अपने प्राणतुल्य सुहृद का यह अन्त सुनकर चन्द्रापीड के भी प्राण उसी क्षण निकल गए। इसी अवसर पर कादम्बरी घटना-स्थल पर पहुँचती है और अपने प्रेमी को निष्प्राण पाकर स्वयं प्राण-विसर्जन करने के लिये उद्यत हो जाती है। पर एक आकासवाणी उसे ऐसा करने से रोकती है और आश्वासन देती है कि महाश्वेता और कादम्बरी का अपने प्रेमी से संयोग निकट भविष्य में अवश्यम्भावी है। यहाँ जाबालि की कथा समाप्त हो जाती है।

तब शुक ने राजा शूद्रक से कहा कि जाबालि से अपने पूर्व जन्म का वृत्तांत सुन मेरे हृदय में महाश्वेता के प्रति अपने पूर्व प्रेम की स्मृति हो आई और मैं आतुर हो आश्रम से उड़ा, किन्तु इस चाण्डाल-कन्या ने मुझे पकड़कर अपने यहाँ रख लिया। इसी ने मुझे आपको समर्पित किया है। इसके अतिरिक्ति मैं कुछ नहीं जानता। तब चाण्डाल-कन्या ने राजा शूद्रक से निवेदन किया कि मैं पुण्डरीक (जिसका पुनर्जन्म वैशम्पायन के रूप में हुआ था) की माता लक्ष्मी हूँ और अब इसे तथा आप (शूद्रक) को मिले शाप की अवधि समाप्ति पर ही है। इस पर शूद्रक (जो अपने पूर्व जन्म में चन्द्रापीड थे) को कादम्बरी के प्रति अपने प्रेम की स्मृति हो आई। उनके प्राण तुरन्त निकल गये और उधर चन्द्रापीड जीवित हो उठे।

चाण्डाल कन्या (अथवा लक्ष्मी) ने जिस शाप की ओर संकेत

किया उसका रहस्य इस प्रकार है। महाश्वेता के प्रेमी पुण्डरीक ने चन्द्रमा को बार-बार जन्म लेने का शाप दिया था। चन्द्रमा ने भी पुण्डरीक को ऐसा ही शाप दिया। इन शापों के फलस्वरूप चन्द्रमा ने चन्द्रापीड के रूप में तथा पुण्डरीक ने वैशम्पायन के रूप में जन्म लिया। चन्द्रापीड और वैशम्पायन ने पुनः शूद्रक तथा शुक के रूप में जन्म लिया। शुक की कथा की समाप्ति के बाद शाप की अवधि भी समाप्त हो गई। इसके बाद पुण्डरीक और महाश्वेता, चन्द्रापीड और कादम्बरी का सुखद मिलन हुआ और वे अवर्णनीय आनन्द का आस्वादन करते हुये सुखपूर्वक रहने लगे।

ऐसा प्रतीत होता है कि बाण ने 'कादम्बरी' का कथा-बीज गुणाढ्य की बृहत्कथा से लिया है। बृहत्कथा अब उपलब्ध नहीं, पर उसके जो संस्कृत रूपान्तर मिलते हैं, उनमें आई सुमनस की कथा तथा 'कादम्बरी' की कथा में कुछ साम्य अवश्य देख पड़ता है। सम्भव है, बाण ने अपनी कथा की मूल घटनायें बृहत्कथा से ली हों, किन्तु यह निर्विवाद है कि उन्होंने अपनी प्रतिभा का पुट चढ़ाकर उसे एक सर्वथा नवीन एवं मौलिक रूप दे दिया है।

'कादम्बरी' संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है। उसके कथानक में, कथा और उपकथा के संमिश्रण से कुछ जटिलता अवश्य आ गई है, फिर भी उसके स्वाभाविक विकास और कुशल निर्वाह में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। सारी कथा कुतूहलमय रोचकता से ओत-प्रोत है। पाठक की रुचि और उत्सुकता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। प्रधान नायिका कादम्बरी का उल्लेख कथा के मध्य भाग में जाकर होता है। महाश्वेता की प्रणय-कथा तो कादम्बरी के प्रणय की एक भूमिका मात्र है। शूद्रक की राजसभा में चाण्डाल-कन्या का विलक्षण वैशम्पायन शुक को लेकर प्रवेश करना, यह प्रारम्भिक घटना ही ऐसे रहस्य में लिपटी हुई है कि उसके उद्घाटन के लिये आगे-बरबस बढ़ना पड़ता है। यह रहस्योद्घाटन कथा के अन्त में जाकर होता है। वहाँ शूद्रक को ही

प्रधान नायक जानकर 'अद्भुत रस' की प्रतीति होती है। कवि ने कादम्बरी और महाश्वेता दोनों की प्रणय-कथा स्वाभाविक रूप से परस्पर सम्बद्ध कर अपने वस्तु-विन्यास कौशल का परिचय दिया है।

बाण ने अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण बड़े विशद रूप से किया है। 'कादम्बरी' के सभी पात्र सजीव हैं। सौम्य, युवक हारीत, उदार नृपति तारापीड, आदर्श अमात्य शुकनास, सुकुमार रानी विलासवती, छाया की भाँति चन्द्रापीड का अनुसरण करने वाली किन्तु कवि की उपेक्षिता पत्रलेखा, स्नेहमय पर कठोर कपिंजल, शुभ्रवदना तपस्विनी महाश्वेता—ये पाठक के अन्तस्तल पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं। कादम्बरी के चित्रण में बाण ने अपने अप्रतिम कल्पना वैभव, वर्णन-पटुता और मानव मनोवृत्तियों के मार्मिक निरीक्षण का परिचय दिया है। चन्द्रापीड के प्रति आकृष्ट होने पर वह किस प्रकार आशा और निराशा, मिलन और विरह के परस्पर विरोधी भावों के बीच झूलती है, इसका बाण ने बड़ा हृदयग्राही चित्रण किया है।

'कादम्बरी' में बाण ने केवल अपनी कल्पना के अतिरंजित चित्र उपस्थित नहीं किए हैं, प्रस्तुत अपने बहुमुखी जीवन के विविध अनुभवों को रोचक रूप में प्रस्तुत किया है। प्रासाद, नगर, वन तथा आश्रमों का यथातथ्य वर्णन उनके पर्याप्त भ्रमण का द्योतक है। शुकनास के मुख से उन्होंने चन्द्रापीड को जो उपदेश दिलाया है, वह आज भी प्रत्येक नवयुवक स्नातक के लिये दीक्षांत भाषण से कम नहीं।

'कादम्बरी' की वर्णन विविधता दर्शनीय है। सच तो यह है कि यदि संस्कृत साहित्य में चित्रांकन के विषयों की कमी नहीं है तो संस्कृत कवियों में बाणभट्ट की भाँति चित्राङ्कन में कोई निपुण नहीं हुआ। समस्त कादम्बरी-काव्य एक चित्रशाला है—'इस कुञ्जवन की गली में नये-नये रङ्गों के अनेक लता-वितान हैं, प्रलोभनीय अंशों की बहुलता है।' कहीं विन्ध्याचल की विकट अटवी का रोमांचकारी दृश्य है, कहीं जाबालि के शान्त और पावन आश्रम की सात्विक शोभा का चित्र है, कहीं

शूद्रक और तारापीड के राजकीय विलास और वैभव का वर्णन है। कहीं वीणावादिनी महाश्वेता की विरहविधुरा मूर्ति का दर्शन है तो कहीं कमनीय कलेवरा कादम्बरी के प्रणयोन्माद और सलज्ज कौमार्य का स्निग्ध चित्रण है। आच्छोद सरोवर तथा हिमालय के भव्य दृश्यों का वर्णन भी अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। द्रविड़ यति का वर्णन इस बात का सूचक है कि बाण उपहासयोग्य विषयों का सफल अङ्कन कर सकते हैं। परिहास का भी उनमें अभाव नहीं, उदाहरणार्थ स्कंदगुप्त की नाक उनकी वंशावली के समान ही लम्बी बताई गई है। इन्द्रायुध अश्व के सजीव वर्णन से बाण को 'तुरङ्गबाण' की पदवी मिली। साधारणतः लोग घटना-वर्णन करके कथा प्रारम्भ करते हैं, पर बाणभट्ट चित्र सज्जित करके कथा बढ़ाते हैं। इसी से उनकी कथा गतिशील नहीं है, वह वर्णच्छटा से ही अङ्कित है। चित्र भी धारावाहिक रूप से हों, सो नहीं। एक-एक चित्र के चारों ओर कारुकार्यविशिष्ट और बहुविस्तृत भाषा रूपी सोने के चौखटे जड़े हुये हैं। फ्रेम सहित ऐसे चित्रों के सौंदर्य का जिसने उपभोग नहीं किया, उनका दुर्भाग्य ही समझना चाहिये।

'कादम्बरी' के अध्ययन से हमें तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का परिज्ञान हो सकता है। स्त्रियों द्वारा सन्तानप्राप्ति के लिये जादू टोनों का प्रयोग; राज्याभिषेक की परिपाटी, शैव, शाक्त और क्षपणक आदि के सम्प्रदाय; सद्योजात शिशु के उपचार; स्त्री-पुरुषों की वेशभूषा और आभूषण; विलास और आमोद-प्रमोद की सामग्री; वर्णव्यवस्था; सती-प्रथा आदि सभी सामाजिक जीवन के अङ्गों पर 'कादम्बरी' में स्थल-स्थल पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है[1]।

'कादम्बरी' का प्रधान रस श्रृङ्गार है। 'कादम्बरी' जन्म-जन्मान्तर

१—K.R. Potdar: Contemporary life as revealed in Bana's works.' Journal of Bombay Univ. XI-2.

के संचित संस्कारों का, 'जननान्तर-सौहृद' का सजीव चित्रण है; विस्मृत अतीत तथा जीवित वर्तमान को स्मृति के सुकुमार तारों से संयुक्त करने वाली काव्य-श्रृङ्खला है; मानव हृदय की मूक प्रणय-वेदना की मर्मभरी कथा है। बाण ने जिस प्रेम का चित्रण किया है, वह सर्वथा उदात्त एवं परिष्कृत है। उनके द्वारा चित्रित प्रेम का उद्दाम वेग कुल और समाज की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। दशकुमारचरित की भाँति 'कादम्बरी' के श्रृङ्गाररस-चित्रण में कहीं अश्लीलता की गन्ध नहीं पाई जाती। सच तो यह है कि महाश्वेता के प्रेम में पागल पुण्डरीक की कपिंजल द्वारा भर्त्सना करा कर कवि ने यह शिक्षा दी है कि असंयत प्रेम मानसिक और शारीरिक दुरवस्था का कारण होता है। सच्चा प्रणय सत्य की भाँति चिरन्तन है। काल की कराल छाया उसे आक्रान्त नहीं कर सकती; समय का प्रवाह उसे विस्मृति के गर्त में लीन नहीं कर सकता। तपस्या की कठोरता अथवा राजसी जीवन की विलासिता उसके उद्दाम वेग को दबा नहीं सकती। प्रणय की ज्योति आशा और अटल विश्वास से नूतन जीवन धारण करती है तथा आदर्श स्नेह के सहारे मृत्यु के अन्धकार में भी अभिनव आलोक छिटकाती है।

संस्कृत प्रसिद्ध ग्रन्थों में 'कादम्बरी' सदा से अत्यन्त लोकप्रिय रही है। प्रियतम की शैय्या की ओर स्वेच्छा से संचरण करती हुई नवोढ़ा वधू की भाँति वह अपने अतुलनीय रसास्वाद से पाठकों के चित्त-चंचरीक को निरन्तर आप्यायित करती आई है[1]। भूषणभट्ट का यह कथन प्रत्येक सहृदय के विषय में चरितार्थ हो रहा है—

कादम्बरीरसभरेण समस्त एव।
मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम्॥

१—स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव॥ कादम्बरी ८

'कादम्बरी' की प्रशंसा में कुछ और उक्तियों का अवलोकन कीजिये— 'कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते', 'सहर्षचरितारब्धाद्भुतकादम्बरी-कथा'। 'कीर्तिकौमुदी' में लिखा है कि बाण की कादम्बरी रूपी ध्वनि को सुनकर कवि लोग अनाध्याय का पालन करने लगते हैं—

युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रितः।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः॥ १ । १५

बाण की शैली—बाण ने गद्य-शैली का आदर्श सूचित करते हुए हर्षचरित के आरम्भ में लिखा है—

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽश्लिष्ट स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्॥

अर्थात् मौलिक कल्पना, सुरुचिपूर्ण स्वभावोक्ति, अक्लिष्ट श्लेष, स्फुट रूप से प्रतीयमान रस तथा दृढ़बन्ध पदावली, इन समस्त गुणों का एकत्र संनिवेश दुर्लभ है। दूसरे के मन के भावों का यथातथ्य चित्रण (अन्यचिंतितस्वभावाभिप्रायवेदकम्) तथा अभिनव अर्थ की कल्पना (उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसंचयम्) को बाण उत्कृष्ट गद्य शैली का प्रधान लक्षण मानते हैं।

बाण के गद्य की रीति 'पांचाली' है जिसमें अर्थ के अनुरूप ही शब्दों का गुम्फन होता है।

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पांचलीरीतिरिष्यते।
शिलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥ सरस्वतीकंठाभरण

बाण की शैली में शब्द और अर्थ, भाषा और भाव का रुचिर सामंजस्य स्पष्ट लक्षित होता है। विषय के अनुरूप ही शब्दावली का प्रयोग किया गया है। विकट विन्ध्याटवी के वर्णन में कवि ने विकट शब्दों एवं समासों का यथेच्छ व्यवहार किया है—'क्वचित्प्रलयवेलेव महावराहदंष्ट्रासमुत्खातधरणिमंडला, क्वचिद्दशवक्त्रनगरीव चपलवानरकुलभंगुरितोत्तुङ्गसालाकुला' ... क्वचिदुद्वृत्तसतापतिनादभीतेव कपट-

किता।' वसन्त के वर्णन में तदनुरूप सुकुमार वर्णों का विन्यास किया गया है—'अशोकतरुताडनारणितरमणीमणिनूपुरझङ्कारसहस्रमुखरेषु सकलजीवलोकहृदयानन्ददायकेषु मधुमासदिवसेषु !'

बाण की शैली में अलंकारों का समुचित प्रयोग अपूर्व रमणीयता का सञ्चार करता है। उनके अलङ्कारों की छटा दर्शनीय है। उनके लम्बे-लम्बे समास यदि गिरि-नदी के उद्दाम प्रवाह की भाँति हैं, तो इनकी श्लिष्ट उपमाएँ इन्द्रधनुष की छाया की भाँति उसे रङ्गीन बना देती हैं। उनके अनुप्रास भाषा में विलक्षण स्वर-माधुर्य का सञ्चार करते हैं—'इभकलभकोमलनपल्लवबेल्लितलवलीलयैः', 'मधुकर कुल-कलंककालीकृतकालेयककुसुमकुड्मलेषु।' उनके श्लेष-प्रयोग जुही की माला में पिरोये गये चम्पक पुष्पों की भाँति हैं—'निरन्तर-श्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव।' उनकी रसनोपमा का एक मनोहर उदाहरण देखिए—'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधु-मासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्।' विरोधाभास का नमूना देखिए—'शिशिरस्यापि रिपुजनसन्तापकारिणः, स्थिरस्याप्यनवरतं भ्रमतः, निर्मलस्यापि मलिनीकृतारातिवनितामुखकमलद्युतेः, अति-धवलस्यापि सर्वजनरागकारिणः'। अर्थापत्ति अलंकार की छटा देखिए—'किं बहुना। तापसाग्निहोत्रधूमलेखाभिरुत्सर्पन्तीभिरनिशमुपपादित-कृष्णाजिनोत्तरासङ्गशोभाः फलमूलभृतो वल्कलिनो निश्चेतनास्तरवोऽपि सनियमा इव लक्ष्यन्तेऽस्य भगवतः समीपवर्तिनः। किं पुनः सचेतनाः प्राणिनः।' बाण के गद्य में एक ही ध्वनि उत्पन्न करने वाले ललित पदविन्यास की मधुर झङ्कार सुनाई पड़ती है—'वशीकर्तुकामं काममिव सनियमम्', 'हृतनयनजलकणनीहारिणि विप्रद्विहारिणि मनोहारिणि,' 'कर्पूरधूलिधूसरेषु मलयजरसलवलुलितेषु बकुलावलीवलयेषु रतनेषु।'

बाण का प्रकृति-चित्रण विशद, सजीव, अलंकृत और उनकी सूक्ष्म

निरीक्षण शक्ति का परिचायक है। 'एकदा तु नातिदूरोतिते नवनलिनदलसम्पुटभिदि किंचिदुन्मुक्तपाटलिम्नि भगवति मरीचिमालिनि'— शब्दों की कैसी लड़ी है ! अरुण वर्ण के तरुण सूर्य का आभास कराना ही कवि का मुख्य प्रयोजन है, किन्तु भाषा के इन्द्रजाल से, केवल विशेष्य विशेषण के विन्यास से, हृदय में सुरम्य, सुगन्ध, सुवर्ण और सुशीतल सुप्रभातकाल तत्क्षण नाच उठता है। इसी प्रकार—'दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना संध्या'—कपिला धेनु के साथ सन्ध्याकालीन रंग की तुलना करते हुये कवि क्षण भर में हृदय के भीतर संध्या की समस्त शान्ति, श्रान्ति तथा धूसर छाया भर देता है। बाण की दृष्टि प्रकृति के घोर और रम्य दोनों पक्षों पर पड़ी है। रमणीय आच्छोद सरोवर, हिमालय के भव्य दृश्य, तथा भयानक विन्ध्याटवी के वर्णन इसके उदाहरण हैं। प्रकृति-वर्णन में उन्होंने श्लिष्ट उपमाओं का विशेष प्रयोग किया है—'यौवनमिवोत्कलिकाबहुलं पण्यमुख चरित मिव श्रूयमाणक्रौञ्चवनिताप्रलापं, भारतमिवपाण्डुधार्तराष्ट्रकुलकृतक्षोभं, कद्रुस्तनयुगलमिव नागसहस्रपीतपयोगण्डूषमच्छोदं नाम सरो दृष्टवान्।' इस प्रकार वे प्रकृति वर्णन करने के साथ-साथ अपना पौराणिक, शास्त्रीय तथा अनुभव-जन्य ज्ञान भी प्रकट कर देते हैं। यह शैली सर्वथा निर्दोष नहीं कही जा सकती, क्योंकि इससे कवि के पांडित्य का जितना बोध होता है उतना प्राकृतिक दृश्य के वास्तविक बिम्ब का नहीं। बाण का प्रकृति-चित्रण अतः प्रकृति के अनुरूप होता है। सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रमा, वसन्त ऋतु के वर्णन में यह विशेषता स्पष्ट देख पड़ती है। तपःपूत जाबालि के आश्रम में सूर्यास्त का वर्णन कैसे शान्त एवं पवित्र भावों का परिचायक है—'अनेन च समयेन परिणतो दिवसः। स्नानोत्थितेन मुनिजनेनार्घविधिमुपपादयता यः क्षितितले दत्तस्तमम्बरतलगतः साक्षादिव रक्तचन्दनाङ्गरागं रविरुद्वहत्। ऊर्ध्वमुखैरर्कबिम्बविनिहितदृष्टिभिरूष्मपैस्तपोधनैरिवपरिपीयमानतेजःप्रसरो विरलातपो दिवसस्तनिमानमभजत्। उद्यत्सप्तर्षिसार्थस्पर्शं परिजिहीर्षयेव

संहृतपादः पारावतचरणपाटलरागो रविरम्बरतलादलम्बत्। विहाय धरणितलमुन्मुच्य कमलिनीवनानि शकुनय इव दिवसावसाने तपोवनतरुशिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत।'—'इसी समय दिन ढल चला। मुनियों ने स्नान के बाद अर्घ्य देते समय जो चन्दनराग पृथ्वी पर अर्पित किया था, मानों उसी रक्त चन्दन को आकाश में स्थित सूर्य ने अपने अङ्गों में धारण कर लिया है। ऊपर की ओर मुख उठाकर सूर्य-मण्डल पर दृष्टि डाले, सूर्य-किरणों का पान करने वाले तपस्वियों द्वारा मानों चारों तरफ फैला हुआ प्रकाश पाया जा रहा है, तभी तो दिन क्षीणता को प्राप्त हो रहा है। कपोत के चरणों के समान लाल-लाल सूर्य आकाश के छोर पर पहुँच कर अपने पाद (किरण) इसलिये समेट रहा है कि कहीं वे इस उगते हुये सप्तर्षि-मण्डल से छू न जायँ। दिन डूबने की इस घड़ी में सूर्य-रश्मियाँ पृथ्वी-तल को छोड़ आश्रम के वृक्षों तथा पर्वतों के शिखरों पर पक्षियों की भाँति बसेरा ले रही हैं।' बाण मानवीय मनोभावों का प्रकृति के दृश्यों पर आरोप करने में कुशल हैं। सूर्य के विदेश-गमन पर उसकी प्रियतमा कमलिनी शीघ्र पति-समागम की इच्छा से तपस्विनी का व्रत धारण करती है—कमल का मुकुल उसका कमण्डलु है, श्वेत हंस उसका उत्तरीय है, कमल की नाल उसका शुभ्र यज्ञोपवीत है तथा भ्रमरों की पंक्ति उसकी रुद्राक्ष माला है।

बाण की वर्णन-शक्ति अद्भुत है। 'कादम्बरी' के वर्णनात्मक स्थलों में वे कई प्रकार की शैलियों का प्रयोग करते हैं। कहीं वाक्यावली संक्षिप्त कर भावों का द्रुतवेग से उन्मेष करना आवश्यक प्रतीत होता है तो कहीं भाषा का प्रलोभन संवरण भी दुस्साध्य हो जाता है। जहाँ विषय भाव-प्रधान, मार्मिक अथवा गम्भीर होता है, वहाँ उनकी शैली बड़ी ही सशक्त और प्रभावोत्पादक होती है। वाक्य छोटे-छोटे होते हैं, दीर्घसमासों का अभाव होता है और विशेषणपद न्यून होते हैं। एक उदाहरण देखिए। कपिञ्जल मदन-व्यथा से पीड़ित पुण्डरीक की भर्त्सना कर रहा है—'सखे

पुण्डरीक नैतदनुरूपं भवतः। क्षुद्रजनक्षुण्ण एष मार्गः धैर्यधना हि साधवः। किं यः कश्चित्प्राकृत इव विक्लवी-भवन्तमात्मानं न रुणत्सि। कुतस्तवापूर्वोऽयमद्येन्द्रियोपप्लवो येनास्येवं कृतः। क्व ते तद्धैर्यं, क्वासाविन्द्रियजयः।········निरुपकारो गुरूपदेशविवेकः। निष्प्रयोजना प्रबुद्धता निष्कारणं ज्ञानम्। यदत्र भवादृशा अपि रागाभिषंगैः कलुषीक्रियन्ते प्रमादैश्चाभिभूयन्ते।' कैसी शक्तिशाली भाषा है! अन्यत्र, उपदेश देते समय अथवा शिष्टाचार दिखाते समय बड़ी सरल शैली प्रयुक्त हुई है। शुकनास चन्द्रापीड को लक्ष्मी के दोष समझा रहे हैं—'न ह्येवंविधम-परमपरिचितमिह जगति किंचिदस्ति यथेयमनार्या। लब्धाऽपि खलु दुःखेन पाल्यते। दृढ़गुणपाशसंदाननिष्पन्दीकृतापिनश्यति न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शील पश्यति। न वेदग्ध्य गणयति।······न लक्षणं प्रमाणी करोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति।' किन्तु राजवैभव, रमणीविलास अथवा प्राकृतिक भव्यता के चित्रण में उनकी शैली अलंकृत, अपेक्षाकृत क्लिष्ट एवं प्रगाढ़ हो जाती है। दीर्घकाय समास, विपुल वाक्य, विशिष्ठ एवं श्लिष्ट पदावली तथा चित्र-काव्य के सभी साधनों का प्रचुर प्रयोग देख पड़ता है: 'कल्लोलमुखर समुद्र की लहर की भाँति जहाँ तक सम्भव है, भाषा उद्वेलित हो उठी है—सीमा पार कर गई है, अकृपण कविप्रतिभा ने कल्पना की यथेष्ट वृष्टि की है।' शूद्रक, जाबालि आश्रम विन्ध्याटवी, महाश्वेता तथा कादम्बरी के वर्णन ऐसी शैली के उपयुक्त उदाहरण हैं। ऐसे स्थलों पर भी बाण बीच-बीच में छोटे-छोटे वाक्य बैठा देते हैं, जिससे वर्णन-विस्तार आयासजनक न हो जाय। प्रायः यह भी देखा जाता है कि इस प्रकार के क्लिष्ट स्थलों के बाद तुरन्त ही सरल और प्राकृतिक शैली के दर्शन होते हैं।

बाण की शैली में सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति, अलंकृत वर्णनप्रणाली, प्रकृष्ट प्रकृति-प्रेम, उर्वर कल्पनाः अजस्र शब्दराशि तथा मौलिक अर्थों की उद्भावना—ये सभी गुण सर्वत्र समान रूप से पाये जाते

हैं। इसका आशय यह नहीं कि उनकी शैली सर्वथा दोष रहित है। उनके वर्णन प्रायः बहुत लम्बे हो जाते हैं। किसी प्रस्तुत प्रसंग को वे तब तक नहीं छोड़ते जब तक वह पूर्णतया आलोडित न हो जाय। कोई पर्यायवाची विशेषण बाकी नहीं बचता; कोई श्लिष्ट या लाक्षणिक प्रयोग रह नहीं जाता। उनकी कल्पना सदा मुक्तहस्त रही है अस्थान और अपात्र में भी उसने अपनी सम्पत्ति की अजस्र वर्षा की है। पाश्चात्य आलोचक उनमें गद्य की एक ऐसे भीषण अरण्य से उपमा देते हैं, जहाँ क्लिष्ट एवं दुरूह शब्दों के झाड़ खड़े हैं, सूक्ष्म पौराणिक संकेतों की कन्दरायें हैं और विपुलकाय विकट समासों के रूप में व्याघ्र विचरण कर रहे हैं। बाण कथानक में यथास्थान विस्तार और शंकोच नहीं करते। कथा के बीच अवान्तर वर्णनों के बाहुल्य से कथानक की प्रगति कुण्ठित हो जाती है। उज्जयिनी, शुकनास-प्रासाद: चण्डिका-मन्दिर; चन्द्रोदय आदि के वर्णन कवित्व की दृष्टि से उच्च कोटि के हैं, किन्तु विशेष विस्तृत और अतिरंजित होने के कारण कथानक के प्रवाह को शिथिल कर देते हैं।

वस्तुतः बाण के गद्य-काव्यों का यथार्थ महत्व उनके कथानक चरित्र-चित्रण अथवा वस्तु-विन्यास में नहीं,, वरन् उनके कवित्व एवं रसमय प्रवाह में है। 'संस्कृत भाषा का उन्होंने अनुचरों से घिरे सम्राट् की भाँति प्रस्थान कराया है और कथा को पीछे-पीछे प्रच्छन्न भाव से छत्रधर की भाँति छोड़ दिया है।' उनके भाषा-कौशल और कल्पना-वैचित्र्य से ही उनकी कृतियाँ इतनी आकर्षक और लोकप्रिय हुई हैं। अपनी इस असाधारण शैली द्वारा ही वे बृहत्कथा के सीधे साधे कथानक को साहित्यिक सौन्दर्य प्रदान कर सके। उनका गद्य व्यावहारिक कार्यों के लिये भले ही अनुपयुक्त हो; किन्तु 'कादम्बरी' के समान उत्कृष्ट गद्य-काव्य के लिये सर्वथा उपयुक्त है। उनके वाक्य विपुलकाय होते हुए भी अस्पष्ट नहीं। समासों और विशेषण-पदों का आधिक्य होते हुए भी वे विशद और परिष्कृत हैं। उनके पौराणिक संकेत हम

भारतीयों के लिये कदापि क्लिष्ट नहीं है। उनके शब्द-चित्रों में विविधता तथा प्रभविष्णुता है। उनका शब्द-भंडार अक्षय है। उनका वाक्यप्रबन्ध चारु एवं स्निग्ध है। औचित्य का वे कभी अतिक्रमण नहीं करते। उनके संवाद अत्यन्त स्वाभाविक एवं प्रभावशाली होते हैं। उनकी कल्पना अजस्र और उत्तरोत्तर विकासशील होती है। महाश्वेता के निम्नलिखित वर्णन में उनकी कल्पना-विभूति का कैसा प्रसार है—'शुक्लपक्षपरम्परामिव पुंजीकृतां, शङ्खादिवोत्कीर्णां, मृणालैरिव विरचितावयवां, दन्ततलैरिव घटितां, इन्दुकरकूर्चकैरिव प्रक्षालितां अमृतफेनपिण्डैरिव पाण्डुरीकृताम्।'

आधुनिक आलोचना के सिद्धान्तों की कसौटी पर बाण की शैली की समीक्षा करना अनुचित होगा। कोई भी लेखक अपने समय में प्रचलित आदर्शों और रूढ़ियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। बाण की आलोचना करते समय भी हमें यही दृष्टिकोण सम्मुख रखना चाहिये। अलंकृत गद्य-शैली ही उनके समय में समादृत थी। उस समय समास-बाहुल्य तो गद्य का प्राण ही समझा जाता था—'ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्।'[1] प्रत्येक कला कुछ प्रचलित रूढ़ियों के द्वारा ही अपने आदर्श पर पहुँच सकती है। समास बहुलता एक ऐसी ही रूढ़ि थी। यदि हम इस रूढ़ि के पार देखेंगे तो हमें स्वीकार करना होगा कि बाण उच्चकोटि के गद्य-कवि थे। कथाकार की कला में, मानव-हृदय के सुकुमार भावों की अभिव्यक्ति में, उन्नत चरित्रों की सृष्टि में, उदात्त जीवन एवं सौजन्यपूर्ण व्यवहार के चित्रण में तथा शिष्ट संवादों के निरूपण में बाण भारतीय साहित्य में अनुपमेय हैं और विश्व-साहित्य में उच्चस्थान पाने योग्य हैं।

आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों को बाण की शैली के सौन्दर्य को हृदयंगम करने में भले ही कठिनाई होती हो, किन्तु जिस भाषा में

१—काव्यादर्श १।८०

बाण ने अपनी कृतियों की रचना की है, उसके पण्डितों ने उनकी शैली की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। 'विदग्धमुख मण्डन' के रचयिता धर्मदास किस विलक्षण ढङ्ग से बाण की प्रशंसा करते हैं—

रुचिरश्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य॥

'रुचिर स्वर, वर्ण तथा पदों से विभूषित, रस और भावों से अलंकृत वह संसार के चित्त को आकृष्ट कर रही है।' 'क्या तुम किसी तरुणी की बात कर रहे हो ?' 'नहीं, नहीं, मैं तो बाण की सरस मधुर वाणी के सम्बन्ध में कह रहा हूँ।' त्रिलोचन के अनुसार बाण की कविता के समान अन्य कवियों की रचना केवल चपलता है—

हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत्कविकुरंगाणां चापलं तत्र कारणम्॥

'पारवतीपरिणय' में नृत्यति यद्रसनायां वेधोन्मुखलासिका वाणी' इस प्रकार बाण के विषय में ठीक ही कहा गया है। बाण की सर्वव्यापिनी प्रतिभा को लक्ष्य में रख कर ही 'बाणोच्छिष्ट जगत्सर्वम्' कहा जाता है। गोवर्धनाचार्य का कहना है कि जिस प्रकार पूर्व समय में अधिक प्रगल्भता प्राप्त करने के लिए शिखण्डिनी शिखण्डी बन गई थी, उसी प्रकार पुरुष रूप में अधिक चमत्कार पाने की अभिलाषा से वाणी (सरस्वती) ने बाण का अवतार लिया—

जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह॥

प्रसन्नराघव के कर्ता जयदेव ने बाण को, कविता-कामिनी के हृदय-मन्दिर में निवास करने वाला साक्षात् कामदेव ही बता दिया है— 'हृदयवसतिः पंचबाणस्तु बाणः।' त्रिविक्रमभट्ट ने अपने 'नलचम्पू' में बाण की लोकप्रियता की इस प्रकार प्रशंसा की है—

शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रंजितो जनः ॥ १।१४

गङ्गादेवी के अनुसार बाण की भारती वीणा की सुमधुर तान को हरने वाली है—

वाणीपाणिपरामृष्ट वीणानिक्काणहारिणीम्।
भावयन्ति कथं वान्ये भट्टबाणस्य भारतीम् ॥

श्री चन्द्रदेव कहते हैं कि कुछ लोग श्लेप में, कुछ शब्दों के उपयुक्त गुम्फन में, कुछ रसाभिव्यक्ति में, कुछ अलंकार, अर्थ-व्यक्ति अथवा कथा-वर्णन में कुशल होते हैं, किन्तु बाण तो कविता की विन्ध्याटवी में कवि-कुंजरों के गण्डस्थल को विदीर्ण करने वाले सिंह हैं—

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरेऽ-
लंकारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने
आ सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी-
संचारी कविकुम्भकुम्भिभिदुरो वाणस्तु पंचाननः ॥

बाणभट्ट के पश्चात् भी गद्यकाव्य लिखे जाते रहे। उनमें प्रायः बाण की कृतियों का ही अनुकरण है। धनपाल (१००० ई०) की तिलकमंजरी पर 'कादम्बरी' का प्रभाव स्पष्ट है। पर तिलक मंजरी की विशेषता यह है कि उसमें चित्रकला, प्रस्तरकला तथा अन्य कला-कौशलों का स्थल-स्थल पर विशद उल्लेख हुआ है। तत्कालीन भारत में विविध कलाओं के अनुशीलन का यथातथ्य चित्रण तिलकमंजरी में उपलब्ध होता है[१]। वादीभसिंह (१००० ई०) की गद्यचिन्तामणि का कथानक 'कादम्बरी' के समान ही है। रीति और भाषा-भंगिमा में भी बाण का अनुकरण देख पड़ता है। वामनभट्ट बाण (१५०० ई०) का

१—'Art notes from Dhanapala's Tilakamanjari, *Inaian Culture* Cet. 1935 pp. 199-210.

वेमभूपालचरित हर्षचरित की प्रतिकृति मात्र है। बाद के गद्य-काव्य साहित्य के इतिहास की दृष्टि से महत्त्व की नहीं। पर दो-एक आधुनिक गद्य-काव्यों का उल्लेख करना आवश्यक है। साहित्याचार पं० अम्बिका-दत्त व्यास ने शिवराजविजय नामक गद्य-काव्य की रचना की है, जो काशी से १९०१ ई० में प्रकाशित हुआ है। व्यास जी का स्थितिकाल १८५८-१९०० ई० था। इनके पूर्वज जयपुर राज्य के निवासी थे, पर इनके पितामह काशी में आकर बस गये थे। वहीं उनका अध्ययन संपन्न हुआ। 'विहारी-विहार' में उन्होंने 'संक्षिप्त निज वृत्तान्त' स्वयं लिखा है। मृत्यु के समय वे गवर्मेण्ट संस्कृत कालेज पटना में प्रोफेसर थे। बिहार में 'संस्कृत संजीवनी समाज' स्थापित कर उन्होंने संस्कृत शिक्षा-प्रणाली का सुधार किया। व्यास जी ने छोटी-बड़ी मिला-कर संस्कृत और हिन्दी में कुल ७८ पुस्तकें लिखी हैं।

शिवराजविजय छत्रपति शिवाजी के जीवन को चित्रित करने वाला रोचक उपन्यास है। ऐतिहासिक घटनाओं पर कल्पना का रंग चढ़ा कर लेखक ने सारी कृति को अतीव हृदयग्राही बना दिया है। विशद वर्णनाशक्ति स्थल-स्थल पर प्रस्फुटित हुई है। कहीं रोचक एवं स्वाभा-विक संवाद हैं, कहीं विनोद और हास्य का पुट है, कहीं प्रणय का विमुग्धकारी चित्रण है, कहीं विषम गिर-दुर्गों पर आक्रमण का वर्णन है, कहीं महाराष्ट्र शिविर, तो कहीं मुगल-दरबार का दृश्य है। रोचकता की दृष्टि से शिविराजविजय आधुनिक उपन्यासों से किसी मात्रा में घटकर नहीं है। उसमें विशदवर्णन के साथ ही घटनाओं की तीव्र गतिशीलता भी है। उनकी शैली में प्रासादिकता, और प्रवाह के साथ परिष्कृत प्रौढ़ता भी है। उसमें दण्डी और बाण की शैलियों की सफल अनुकृति भी देख पड़ती है। स्थल-स्थल पर ऐसे शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जो अभी तक कोष में ही पड़े थे, जैसे 'चिह्नम्', 'सरकः', 'चिरंटी', 'कवरी' आदि। शिवराजविजय की शैली का एक उदाहरण देखिये। शिवा जी दिल्ली में प्रवेश कर रहे हैं—"तावत्तं सेतुमुल्लंघ्य परं तट-

माथाता दिल्लीं प्रविविशु : तत्र च प्रधाणस्थैः परिवर्तितग्रीवैर्लोलोष्णीष-बन्धैर्भटैः, आपणोपविष्टैः स्तब्धशंकुज्ञैः स्वर्णकारैः, कर्णार्पितलेखनीकैश्चित्रकारैः, समुपेक्षिततुलादण्डवाणिजैः, विशिथिलस्खलितमानदण्डः पटविक्रयिभिः, रुद्धसीवनैः स्यूतिकारैः, विस्मृतहारग्रन्थनैर्मालाकारैः घंटापथे विचिरद्भिः समाकृष्टवल्गैः सादिभिः, आसादितप्रान्तैः पर्य्यटकैः, आसीर्वचन-स्फुरितोष्ठैरिव ब्राह्मणैः, परिवर्जितक्रीडैर्बालकैः, गवाक्षस्थैः शिथिलितव्रीडैरंगुल्यग्रापसारिततिरस्कारिणीविच्छेदप्रहितकटाक्षावलोकनैः कुलयुवतिजनैश्च सकौतुकं निरीक्ष्यमाणः, कोऽयं, कुतोऽयं, सोऽयं, स एवायं, वीरोऽयं, वीरवरोऽयं, महाराष्ट्रराजोऽयं, दुर्धर्षोऽयं, चिरश्रुतोऽयं शास्तिखानशास्तिशास्त्रज्ञोऽयं, विजयपुरविजयदीक्षितोऽयं गोलखण्ड-खण्डखण्डनपण्डितोऽयं, अम्बरपुरन्दरप्रीतिपरवशोऽयं, सम्राजमुपसर्पति । अम्बराजकुमारेण सह नीयते।'' व्यासजी निःसंकोच 'अभिनव-बाण' कहे जा सकते हैं।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में निबन्ध-लेखन का प्रचार नहीं था। आधुनिक समय में ओरिएण्टल कालेज लाहौर के पण्डित हृषीकेश शास्त्री भट्टाचार्य (१८५० - १९१३ ई०) ने सामयिक विषयों पर सुरुचिपूर्ण निबन्ध लिखकर मौलिक प्रणाली का प्रचार किया है। उन्होंने 'विद्योदय' नामक संस्कृत पत्रिका का ४४ साल तक संपादन किया। 'विद्योदय' में शास्त्रीजी के सामयिक समस्याओं पर सरस और विनोदपूर्ण शैली में लेख रहते थे। विद्वानों ने उनके विषयों की नवीनता तथा विविधता की प्रशंसा की है। मैक्समूलर ने भी शास्त्री जी के अद्भुत कार्य को पसन्द किया था। १९वीं शताब्दी में एक संस्कृत पत्रिका का नूतन विचार प्रणाली से तथा पाश्चात्य विचार-शैली में सम्पादन कर शास्त्री जी ने इस युग में संस्कृत साहित्य की अमूल्य सेवा की है तथा अपने प्रबन्धों से उसकी श्रीवृद्धि की है। उनके लेखों का एक संग्रह प्रबन्ध मञ्जरी १९३० ई० में प्रकाशित हुआ है। यह 'सकलरस [illegible] प्रबन्धानां संग्रहः' है।

इसमें एक लेख 'उद्भिज्ज-परिषद्' है, जिसमें पेड़-पौधों की सभा में मनुष्यों के सम्बन्ध में बड़ी रोचक चर्चा होती है—'अश्वत्थमहोदयः स्वशाखाहस्तमुत्थाप्य प्रतिपादयति—भो भो नानादिग्देशसमागताः सुभद्रा वनस्पतयः, परमप्रियतमा लतावध्वश्च, सावहिताः शृण्वन्तु भवन्तः। अद्य मानवा एवास्मत् समालोच्यविषयः।...मानवा नाम सर्वासु सृष्टिधारासु निकृष्टतमा सृष्टिः। समन्तादभिनवोत्तरविलक्षण-सृष्टिमुत्पादयता भगवता जगत्सचित्रा यादृग् बुद्धिप्रकर्षः सृष्टिनैपुण्यञ्च प्रदर्शितं, मानवसर्गं विदधता पुनर्नेन तत्सर्वमेकपद एवापहारितम्, एतावदुच्चावचसृष्टिपरम्परामवलोक्य स्रष्टुरगाधबुद्धिमत्वं सृष्टिश्चेयं बुद्धि-पूर्विकेति यदस्माभिरनुमितमासीत् पूर्वं, साम्प्रतं मानवसर्गसन्दर्शनेन तु निःशेषतोऽपागतोऽसौ संस्कारः, संजातश्च तद्विपरीतः 'स्रष्टुर्न स्वल्पापि बुद्धिर्विद्यत' इत्येवंरूपः कोऽपि निश्चयः।'

प्रबन्ध मञ्जरी की भाषा अत्यन्त प्रांजल एवं प्रवाहपूर्ण है। संस्कृत में व्यङ्ग-शैली (Catire) का प्रथम प्रादुर्भाव इन्हीं निबन्धों से माना जायगा। भट्टाचार्य की भाषा में भी बाण की शैली की पूरी छाप है। इनके विषय में म० म० पं० गिरिधर शर्मा कहते हैं—

मुद्रयति वदनविवरं मृतभाषावादिना मुहेराणाम्।
स्मरयति च भट्टबाणं भट्टाचार्यस्य सा वाणी॥

संस्कृत गद्य-काव्य की विशेषताएँ

संस्कृत गद्य-काव्य के कथानक का मूल प्रायः लोक-कथाओं (folk-tale) से लिया गया है। लोक-कथाओं की भाँति कथा में उपकथा का संनिवेश करने की प्रथा भी गद्य-काव्यों में देख पड़ती है। किन्तु गद्य-काव्यों की व्यञ्जना-प्रणाली लोक-कथाओं से भिन्न है। उनकी शैली बहुत कुछ पद्य-काव्यों से प्रभावित हुई है। शिष्ट एवं संभ्रान्त वर्ग के लिये लिखे जाने के कारण इन गद्य-काव्यों में उत्कृष्ट

एवं अलंकृत भाषा का प्रयोग तो हुआ ही है, साथ ही वर्णन-शैली का भी अत्यधिक परिष्कार हुआ है। दीर्घकाय समास, अनुप्रास, श्लेष, यमक, परिसंख्या आदि अलंकारों तथा सूक्ष्म पौराणिक संकेतों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। प्रकृति का विस्तृत चित्रण तथा नायक-नायिका की शारीरिक और मानसिक दशाओं का अतिरंजित वर्णन भी हुआ है। शृङ्गार-रस ही इनका प्रधान रस है। लोककथाओं के सरल और प्रवाहयुक्त आख्यानों पर कल्पना और पाण्डित्य का गहरा रंग चढ़ाया गया है। कथा-भाग गौण हो गया है और अलंकृत वर्णन-शैली ही प्रधान हो गई है। पद्य काव्यों के व्यापक प्रभाव के कारण संस्कृत में व्यावहारिक गद्यशैली का विकास बहुत कम देख पड़ता है।

संस्कृत के गद्य-काव्य इस धारणा के पोषक है कि कविता के लिये छन्द अनिवार्य नहीं हैं; छन्दोबद्धता तो उसका केवल एक बाह्य परिच्छेद है। गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से कविता की रचना हो सकती है। यही कारण है कि संस्कृत गद्य-काव्य सहृदयों के हृदय में वास्तविक काव्यानन्द का संचार करते हैं। यदि भाषा सौष्ठव, वर्णन नैपुण्य, कल्पना-वैचित्र्य, रसास्वाद, पद-लालित्य, श्लेष चातुर्य और अलंकार वैभव—इन समस्त काव्यात्मक गुणों का एकत्र अवलोकन करना हो तो संस्कृत के गद्य-काव्यों का अनुशीलन करना चाहिये। ऐसी अलंकृत, उदात्त, एवं परिष्कृत गद्य-शैली का विकास स्यात् ही किसी भाषा के साहित्य में हुआ हो।

———

आदौ दण्डी ततश्चासीत् सुबन्धुः श्लेषमार्मिकः।
तथा श्रीबाणभट्टश्च त्रयो गद्ये प्रकीर्तिताः ॥

संस्कृतगद्यमञ्जरी

—:❀:—

१—आचार्यानुशासनम्

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। ये केचनास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयाऽदेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्, ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः, युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युः, यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः। एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम् एवमु चैतदुपास्यम्।

—तैत्तिरीयोपनिषद् I. 11

२—जगतः कारणं ब्रह्म

चेतनं ब्रह्मैकमद्वितीयं जगतः कारणमिति यदुक्तं तन्नोपपद्यते कस्मादुपसंहारदर्शनात्। इह हि लोके कुलालादयो घटपटादीनां कर्तारो मृद्दण्डचक्रसूत्राद्यनेककारकोपसंहारेण संगृहीतसाधनाः सन्तस्तत्तत्कार्यं कुर्वाणा दृश्यन्ते। ब्रह्म चासहायं तवाभिप्रेतं तस्य साधनान्तरानुपसंग्रहे सति कथं स्रष्टृत्वमुपपद्येत। तस्मान्न ब्रह्म जगत्कारणमिति चेन्नैष दोषः। यतः क्षीरवद् द्रव्यस्वभावविशेषादुपपद्यते। यथा हि लोके क्षीरं जलं वा स्वयमेव दधिहिमभावेन परिणमतेऽनपेक्ष्य बाह्यं साधनं तथेहापि भविष्यति। ननु क्षीराद्यपि दध्यादिभावेन परिणममानमपेक्षत एव बाह्यं साधनं औष्ण्यादिकं कथमुच्यते क्षीरवद्धीति। नैष दोषः स्वयमपि हि क्षीर यां च यावतीं च परिणाममात्रामनुभवत्येव, त्वार्यते त्वौष्ण्यादिना दधिभावाय। यदि च स्वयं दधिभावशीलता न स्यान्नैवोष्ण्यादिनापि बलाद् दधिभावमापद्येत। न हि वायुराकाशो वौष्ण्यादिना बलाद्दधिभावमापद्यते। साधनसंपत्त्या च तस्य पूर्णता संपद्यते। परिपूर्णशक्तिकं तु ब्रह्म, न तस्यान्येन केनचित् पूर्णता संपादयितव्या। तस्मादेकस्यापि ब्रह्मणो विचित्रशक्तियोगात् क्षीरादिवद् विचित्रपरिणाम उपपद्यते।

—शाङ्करभाष्य on ब्रह्मसूत्र II. 1. 2.

———

३—गृहिणः प्रियहिताय दारगुणाः

अस्ति द्रविडेषु काञ्ची नाम नगरी। तस्यामनेककोटिसारः श्रेष्ठिपुत्रः शक्तिकुमारो नामासीत्। सोऽष्टादशवर्षदेशीयश्चिताता-मापेदे—'नास्त्यदाराणामननुगुणदाराणां वा सुखं नाम। तत्कथं नु गुणवद्विन्देयं कलत्रम्' इति। अथ परप्रत्ययाहृतेषु दारेषु यादृच्छिकीं संपत्तिमनभिसमीक्ष्य कार्तान्तिको नाम भूत्वा वस्त्रान्तपिनद्धशालिप्रस्थो भुवं बभ्राम। 'लक्षणज्ञोऽयम्' इत्यमुष्मै कन्याः कन्यावन्तः प्रदर्शयांबभूवुः। यां कांचिल्लक्षणवतीं सवर्णां कन्यां दृष्ट्वा स किल स्म ब्रवीति—'भद्रे, शक्नोषि किमनेन शालिप्रस्थेन गुणवदन्नमस्मानभ्यवहारयितुम्' इति। स हसितावधूतो गृहाद् गृहं प्रविश्याभ्रमत्।

एकदा तु शिबिषु कावेरीतीरपत्तने सह पितृभ्यामवसित-महर्धिमवशीर्णभवनसारां धात्र्या प्रदर्श्यमानां कांचन विरल-भूषणां कुमारीं ददर्श। अस्यां संसक्तचक्षुश्चातर्कयत्—'अस्याः खलु कन्यकायाः सर्व एवावयवा नातिस्थूला नातिकृशा नाति-ह्रस्वा नातिदीर्घा न विकटा मृजावन्तश्च। रक्ततलाङ्गुली यवमत्स्यकमलकलशाद्यनेकपुण्यलेखालाञ्छितौ करौ, समगुल्फ-सन्धी मांसलावशिरालौ चाङ्घ्री, तनुतरमीषन्निम्नं गम्भीरं नाभिमण्डलं, वलित्रयेण चालंकृतमुदरम्, धनधान्यपुत्रभूयस्त्व-चिह्नलेखालाञ्छिततले स्निग्धोदग्रकोमलनखमणी ऋज्वनुपूर्व-वृत्तताम्राङ्गुली संनतांसदेशे सौकुमार्यवत्यौ निमग्नपर्वसंधी च बाहुलते, तन्वी कम्बुवृत्तवन्धुरा च कन्धरा, वृत्तमध्यविभक्त-

रागाधरम् असंक्षिप्तचारुचिबुकम् आपूर्णकठिनगण्डमण्डलम् असंगतानुवक्रनीलस्निग्धभ्रूलतम् अनतिप्रौढतिलकुसुमसदृश नासिकम् असितधवलरक्तत्रिभागभासुरमधुराधीरसंचारमन्थरायतेक्षणम इन्दुशकलसुन्दरललाटम् इन्द्रनीलशिलाकाररम्यालकपंक्ति द्विगुणकुण्डलितम्लाननालीकनाललुलितलम्बश्रवणपाशयुगुलमाननकमलम्, अनितभंगुरो बहुलः पर्यन्तेऽप्यकपिलरुचिरायामवानेकैकनिसर्गसमस्निग्धनीलो गन्धग्राही च मूर्धज कलापः। सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम्। आसज्जति च मे हृदयमस्यामेव। तत्परीक्ष्यैनामुद्वहेयम्। अविमृश्यकारिणां हि नियतमनेकाः पतन्त्यनुशयपरम्पराः' इति स्निग्धदृष्टिराचष्ट— 'भद्रे कच्चिदस्ति कौशलं शालिप्रस्थेनानेन संपन्नमाहारमस्मानभ्यवहारयितुम्' इति।

ततस्तया वृद्धादासी साकूतमालोकिता। तस्य हस्तात्प्रस्थमात्रं धान्यमादाय कश्चिदलिन्दोद्देशे सुसिक्तसंमृष्टे दत्तपादशौचमुपावेशयत्। सा कन्या तान् गन्धशालीन्संक्षुद्य मात्रया विशोष्यातपे मुहुर्मुहुः परिवर्त्य स्थिरसमायां भूमौ नालीपृष्ठेन मृदु मृदु घट्टयन्ती तुषैरखण्डैस्तण्डुलान्पृथक्चकार। जगाद च धात्रीम्—'मातः, एभिस्तुषैरर्थिनो भूषणमृजाक्रियाक्षमैः स्वर्णकाराः। तेभ्य इमान्दत्वा लब्धाभिः काकिणीभिः स्थिरतराण्यनत्यार्द्राणि नातिशुष्काणि काष्ठानि मितंपचां स्थालीमुभे शरावे चाहर' इति। तथाकृते तया तांस्तण्डुलानतिनिम्नोच्चातविस्तीर्णकुक्षौ ककुभोलूखले लोहपत्रवेष्टितमुखेन

समशरीरेण विभाव्यमानमध्यतानवेन व्यायतेन गुरुणा खादिरेण मुसलेन चतुरललितोत्क्षेपणावक्षेपणायासितभुजमसकृदङ्गुलिभिरुद्धृत्योद्धृत्यावहत्य शूर्पशोधितकणकिंशारुकांस्तण्डुलान् सकृदद्भिः प्रक्षाल्य क्वथितपञ्चगुणे जले दत्तचुल्लीपूजा प्राक्षिपत्। प्रश्लथावयवेषु प्रस्फुरत्सु तण्डुलेषु मुकुलावस्थामतिवर्तमानेषु संक्षिप्यानलमुपहितमुखपिधानया स्थाल्यान्नमण्डमगालयत्। दर्व्या चवाघट्ट्य मात्रया परिवर्त्य समपक्वेषु सिक्थेषु तां स्थालीमधोमुखीमवातिष्ठिपत्। इन्धनान्यन्तःसाराण्यम्भसा समभ्युदय प्रशमिताग्नीन् कृष्णाङ्गारीकृत्य तदर्थिभ्यः प्राहिणोत्—'एभिर्लब्धाः काकिणीर्दत्त्वा शाकं घृतं दधि तैलमामलकं चिञ्चाफलं च यथालाभमानय' इति। तथानुष्ठिते च तया द्वित्रानुपदशानुपपाद्य तदन्नमण्डमार्द्रवालुकोपहितनवशरावगतमतिमृदुना तालवृन्तानिलेन शीतलीकृत्य सलवणसंभारं दत्ताङ्गारधूपवास च संपाद्य, तदप्यामलकं श्लक्ष्णपिष्टमुत्पलगन्धि कृत्वा धात्रीमुखेन स्नानाय तमचोदयत्। तया च स्नानशुद्धया दत्ततैलामलकः क्रमेण सस्नौ। स्नातः सिक्तमृष्टे कुट्टिमे फलकमारुह्य पाण्डुहरितस्य त्रिभागशेषलूनस्याङ्गणकदलीपलाशस्योपरि शरावद्वयं दत्तमार्द्रमभिमृशन्नतिष्ठत्। सा तु तां पेयामेवाग्रे समुपाहरत पीत्वा चापनीताध्वक्लमः प्रहृष्टः प्रक्लिन्नसकलगात्रः स्थितोऽभूत्। ततस्तस्य शाल्योदनस्य दर्वीद्वयं दत्त्वा सर्पिर्मात्रां सूपमुपदंशं चोपजहार। इमं च दध्ना च त्रिजातकावचूर्णितेन सुरभिशीतलाभ्यां च कालशेयकाञ्जिकाभ्यां

शेषमन्नमभोजयत्। सशेष एवान्धस्यसावतृप्यत्। अयाचत पानीयम्। अथ नवभृङ्गारसंभृतमगुरुधूपधूपितमभिनवपाटला- कुसुमवासितमुत्फुल्लोत्पलग्रथितसौरभं वारि नालीधारात्मना पातयांचभूव। सोऽपि मुखोपहितशरावेण हिमशिशिरकण- करालितारुणायमानाक्षिपक्ष्मा धारारवाभिनन्दितश्रवणः स्पर्श- सुखोद्भिन्नरोमांचकर्कशकपोलः परिमलप्रवालोत्पीडफुल्लघ्राणरन्ध्रः माधुर्यप्रकर्षावर्जितरसनेन्द्रियस्तदच्छं पानीयमाकण्ठं पपौ। शिरःकम्पसंज्ञावारिता च पुनरपकरकेणाचमनमदत्त कन्या। वृद्धया तु तदुच्छिष्टमपोह्य हरितगोमयोपलिप्ते कुट्टिमे स्वमेवो- त्तरीयकर्पटं व्यवधाय क्षणमशेत। परितुष्टश्च विधिवदुपयम्य कन्यां निन्ये। नीत्वैतदनपेक्षः कामपि गणिकामवरोधमकरोत्। तामप्यसौ प्रियसखीमिवोपाचरत्। पतिं च दैवतमिव मुक्ततन्द्रा पर्यचरत्। गृहकार्याणि चाहीनमन्वतिष्ठत्। परिजनं च दाक्षिण्यनिधिरात्माधीनमकरोत्। तद्गुणवशीकृतश्च भर्ता सर्वमेव कुटुम्बं तदायत्तमेवकृत्वा तदेकाधीनजीवितशरीरस्त्रिवर्गं निर्विवेश। तद्ब्रवीमि—'गृहिणः प्रियहिताय दारगुणाः' इति।

—दशकुमारचरितम् V.

४—वर्षावर्णनम्

एकदा तु कतिपयमासापगमे काकलीगायन इव समृद्धि- निम्नगानदः, सायन्तनसमय इव नर्तितनीलकण्ठः, कुमारमयू इव समारूढशरजन्मा, तपस्वीव प्रशमितरजःप्रसरः, तापस

इव धृतजलदकरकः, प्रलयकाल इव दर्शितानेकतरणिविभ्रमः, निरुपद्रवकाननप्रदेश इव घनोत्सेकितसारंगः, रेवतीकरपल्लव इव हलिधृतकरः, लंकेश्वर इव समेघनादः, विन्ध्य इव घनश्यामः, युवतिजन इव पीनपयोधरः समाजगाम वर्षासमयः।

विभिन्नमेघनीलोत्पलकाननीले क्रीडासरसीव, नभसि स्मरस्य कनकरत्ननौकेव, जलदकाललक्ष्मीमातंगकन्यानर्तनरज्जुरिव, नभःसौधतोरणरत्नमालिकेव, प्रवसता निदाघेन दिवः पयोधरे स्मरणाय दत्ता नखपदावलिरिव, गगनलक्ष्मीबन्धुररशनामालेव, नभोमन्दारसुन्दरकलिकेव, रतिनखमार्जनरत्नशलाकेव, रत्नमयी विलासयष्टिरिव कुसुमकेतोरिन्द्रधनुर्लताऽरराज।

अतितृष्णावेगपीतजलनिधिजलशंखमालां बलाकाच्छलादुद्वमन्निवादृश्यत जलधरनिकरः। पीतहरितैः कृष्णकेदारिकाकोष्ठिकासु समुत्पतद्भिर्दर्दुरशिशुकैर्जातुषैर्नयद्यूतैरिव चिक्रीड विद्युता समं घनकालः। रविदीपकज्वलितमेघीनिकषोपले मेघसमयस्वर्णकारकपितस्वर्णरेखेव तडिदशोभत। विरहिणां हृदयं विदारयितुं कृतं करपत्रमिव कुसुमायुधस्य केतकीपुष्पमभासत। जलददारुणि लोलतडिल्लताकरपत्रदारिते पवनवेगनिर्धूताश्चचूर्णनिकरा इव जलकणा बभुः। विच्छिन्नदिग्वधूहारमुक्तानिकरा इव, खरपवनवेगभ्रमितवनघरट्टघट्टनसंचूर्णिततारानिकरा इव, त्रिभुवनविजिगीषोर्मकरध्वजस्य प्रस्थानलाजाञ्जलय इव करका व्यराजन्त। नवशाद्वलं सेन्द्रगोपं महीमहिलाया शुकांगश्यामलं लाक्षारससाङ्कितं स्तनोत्तरीयमिवालक्ष्यत।

— वासवदत्ता

५—मृत्युशय्यास्थितस्य पितुः पार्श्वे हर्षः

एकदा तु (हर्षः) वासतेय्यास्तुरीये यामे प्रत्युषस्येव स्वप्ने चटुलज्वालापुंजपिंजरीकृतसकलककुभा दुर्निवारेण दवहुतभुजा दह्यमानं केसरिणमद्राक्षीत्। तस्मिन्नेव च दावदहने समुत्सृज्य शावकानुत्प्लुत्य चात्मानं पातयन्तीं सिंहीमपश्यत्। आसीच्चास्य चेतसि—'लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः यदाकृष्टास्तिर्यञ्चोऽप्येवमाचरन्ति' इति। प्रबुद्धस्य चास्य मुहुर्मुहुर्दक्षिणेतरमक्षि पस्पन्दे। गात्रेषु चाकस्मादेव वेपथुर्विपप्रथे। निर्निमित्तमेवान्तर्बन्धनस्थानाच्चचालेव हृदयम्। अहि च तस्मिन् शून्येनैव च चेतसा चिक्रीड मृगयाम्। आरोहति च हरितहये मध्यमह्नो, भवनमागत्योभयतो मन्दमन्दं संवाह्यमानतनुतालवृन्तः क्षितितलवितता मतिशिशिरमलयजरसलवलुलितवपुषमिन्दुधवलोपधानधारिणीं वेत्रपट्टिकामधिशयानः साशङ्क एव तस्थौ।

अथ दूरादेव लेखगर्भया नीलीरागमेचकरुचा चैलचीरकया रचितमुण्डमालकम्, श्रमातपाभ्यामारोप्यमाणकायकालिमानम्, अन्तर्गतेन शोकशिखिनाङ्गारतामिव नीयमानम्, अतित्वरागमद्रुततरपदोद्धूयमानधूलिराजिव्याजेन राजवार्ताश्रवणकुतूहलिन्या मेदिन्येवानुगम्यमानम्, अनिमित्तभूतदीर्घाध्वगं कुरङ्गकनामायान्तमद्राक्षीत्।

दृष्ट्वा च पूर्वानिमित्तपरम्पराविर्भावितभीतिरभिद्यत हृदयेन। कुरङ्गकस्तु कृतप्रणामः समुपसृत्य प्रथमाननलग्नं विषादमुपनिन्ये

पश्चाल्लेखम्। तं च देवो हर्षः स्वयमेवादायावाचयत्। लेखार्थेनैव च समं गृहीत्वा हृदयेन सन्तापमभ्यधात्—'कुरङ्गक, किं मांन्द्यं तातस्यं' इति। स चक्षुषा बाष्पजलबिन्दुभिर्मुखेन च खञ्जाक्षरैः क्षरद्भिर्युगपदाचचक्षे—'देव दाहज्वरो महान्' इति। तच्चाकर्ण्य सहसा सहस्रधेवास्य हृदयं पफाल। कृताचमनश्च जनयितुरायुष्यकामोऽपरिमितमणिकनकरजतजातमात्मपरिबर्हमशेषं ब्राह्मणसादकरोत्। अभुक्त एवोच्चचाल। 'दापय वाजिनः पर्याणम्' इति पुरःस्थितं बभाण युवानम्। वेपमानहृदयश्च ससंभ्रमप्रधावितपरिवर्धकोपनीतमारुह्य तुरङ्गममेकाक्येव प्रावर्तत अकाण्डप्रयाणसंज्ञाशंखक्षुभितं तु संभ्रमात्सज्जीभूतमुद्भूतमुखरखुररवभरितसकलभुवनविवरमागत्यागत्य सर्वाभ्यो दिग्भ्यो धावमानमश्वीयमढौकत।

अन्यस्मिन्नहनि मध्यन्दिने विगतजयशब्दम्, अस्तमिततूर्यनादमुपसंहृतगीतम्, उत्सारितोत्सवं स्कन्धावारं समाससाद। क्रमेण राजद्वारं प्रतिषिद्धसकललोकप्रवेशं ययौ। तुरगादवतीर्णः राजकुलं विवेश। तत्र चातिनिःशब्दे पिहितपक्षद्वारके, परिहृतकवाटरटिते, घटितगवाक्षरक्षितमरुति, निभृतसंज्ञानिर्दिश्यमानसकलकर्मणि, प्रविष्टकतिपयप्रणयिनि, गम्भीरज्वरारम्भभीतभिषजि, दुर्मनायमानमन्त्रिणि, भेषजसामग्रीसंपादनव्यग्रसमग्रव्यवहारिणि, मुहुर्मुहुराहूयमानतोयकर्मान्तिकानुमितघोरातुरतृषि, संचितप्रचुरप्राचीनामलकमातुलुङ्गद्राक्षादाडिमादिफले धवलगृहे स्थितम्, जिह्वाग्रे जीवितेशस्य वर्तमानम्, विरलं वाचि, चलितं

चेतसि, विह्वलं वपुषि, क्षीणमायुषि, प्रचुरं प्रलापे, सततं श्वसिते, पार्श्वोपविष्टयानवरतरोदनोच्छूननयनया गृहीतचामरिकयापि निःश्वसितैरेव वीजयन्त्या विविधौषधिधूलिधूसरितशरीरया मुहुर्मुहुः 'आर्यपुत्र, स्वपिषि' इति व्याहरन्त्या देव्या यशोवत्या शिरसि वक्षसि च स्पृश्यमानं पितरमद्राक्षीत्।

अवनिपतिस्तु दूरादेव दृष्ट्वातिदयितं तनयं तदवस्थोऽपि निर्भरस्नेहावर्जितः प्रधावमानो मनसा प्रसार्य भुजौ 'एह्येहि' इत्याह्वयन् शरीरार्धेन शयनादुदगात्। ससंभ्रमसुपसृतं चैनं विनयावनम्रमुन्नमय्य बलादुरसि निवेश्य विशन्निव प्रेम्णा निशाकरमण्डलमध्यम्, मज्जन्निवामृतमये महासरसि, पीडयन्नङ्गैरङ्गानि, कपोलेन कपोलमवघट्टयन्, निमीलयन्पक्ष्माग्रग्रथिताजस्रास्रविस्राविणी विलोचने विस्मृतज्वरसंज्वरः सुचिरमालिलिङ्ग। कथं कथमपि चिराद्विमुक्तमुपसृत्य कृतनमस्कारं प्रणतजननीकमुपागतमासीनं च शयनान्तिके पिबन्निव विगतनिमेषनिश्चलेन चक्षुषा व्यलोकयत्। पस्पर्श च पुनः पुनर्वेपथुमता पाणितलेन, क्षयक्षामकण्ठश्च कृच्छ्रादिवावादीत्—'वत्स, कृशोऽसि', इति। भण्डिस्त्वकथयत्—'देव तृतीयमहः कृताहारस्यास्याद्य' इति।

तच्छ्रुत्वा वाष्पवेगगृह्यमाणाक्षर कथं कथमप्यायतं निःश्वस्योवाच—'वत्स', जानामि त्वां पितृप्रियमतिमृदुहृदयम्। ईदृशेषु विधुरयति धीमतोऽपि धियमतिदुर्धरो वान्धवस्नेहः सर्वप्रमाथी। अतो नार्हस्यत्मानं शुचे दातुम्। उद्दामदाह-

ज्वरदग्धोऽपि दह्ये खल्वहमधिकतरमनेनायुष्मदाधिना निशितमिव शस्त्रं तद्दणोति मां त्वदीयस्तनिमा। सुखं च राज्यं च वंशश्च प्राणाश्च त्वयि मे स्थिताः यथा मम तथा सर्वासां प्रजानाम्। फलमस्यानेकजन्मान्तरोपार्जितस्याकलुषस्य कर्मणः करतलगतमिव कथयन्ति चतुर्णामप्यर्णवानामाधिपत्यं ते लक्षणानि। त्वज्जन्मनैव कृतार्थोऽस्मि। निरभिलाषोऽस्मि जीवितव्ये। भिषगानुरोधः पाययति मामौषधम्। अपि च सर्वप्रजापुण्यैः सकलभुवनतलपरिपालनार्थमुत्पत्स्यमानानां भवादृशां जन्मग्रहणोपायः पितरौ। प्रजाभिस्तु बन्धुमन्तो राजानः, न ज्ञातिभिः। तदुत्तिष्ठ। कुरु पुनरेव सर्वाः क्रियाः। कृताहारे च त्वय्यहमपि स्वयमुपयोक्ष्ये पथ्यम्' इत्येवमभिहितस्य चास्य धक्ष्यन्निव हृदयमतितरां शोकानलः संदुधुक्षे। क्षणमात्रं च स्थित्वा पुनराहारार्थमादिश्यमानो धवलगृहादवततार। चकार च चेतसि—'अकाण्डे खल्वयं समुपस्थितो महाप्रलयो व्यभ्र इव वज्रपातः। किमत्र करवाणि' इति।

—हर्षचरितम्

६—शूद्रकसभायां शुकः

एकदा तु नातिदूरोदिते नवनलिनदलसंपुटभिदि किंचिदुन्मुक्तपाटलिम्नि भगवति सहस्रमरीचिमालिनि राजानमास्थानमण्डपगतमङ्गनाजनविरुद्धेन वामपार्श्वावलम्बिना

कौक्षेयकेण संनिहितविषधरेव चन्दनलता भीषणरमणीयाकृतिः, अविरलचन्दनानुलेपनधवलितस्तनतटोन्मज्जदैरावतकुम्भमण्डलेव मन्दाकिनी, चूडामणिप्रतिबिम्बच्छलेन राजाज्ञेव मूर्तिमती राजभिः शिरोभिरुह्यमाना, शरदिव कलहंसधवलाम्बरा, जामदग्न्यपरशुधारेव वशीकृतसकलराजमण्डला, विन्ध्यवनभूमिरिव वेत्रलतावती, राज्याधिदेवतेव विग्रहिणी प्रतीहारी समुपसृत्य क्षितितलनिहितजानुकरकमला सविनयमब्रवीत् — 'देव द्वारस्थिता सुरलोकमारोहतस्त्रिशङ्कोरिव कुपितशतमखहुंकारनिपातिता राजलक्ष्मीर्दक्षिणपथादागता चाण्डालकन्यका पंजरस्थं शुकमादाय देवं विज्ञापयति—'सकलभुवनतलसर्वरत्नानामुदधिरिवैकभाजनं देवो विहङ्गमश्चायमाश्चर्यभूतोनिखिलभुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमादायागताऽहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुमिति । एतदाकर्ण्य देवः प्रमाणम् ।' इत्युक्त्वा विरराम । उपजातकुतूहलस्तु राजा समीपवर्तिनां राज्ञामालोक्य मुखानि 'को दोषः, प्रवेश्यताम्' इत्यादिदेश ।

अथ प्रतीहारी नरपतिवचनानन्तरमुत्थाय तां मातङ्गकुमारीं प्रावेशयत् । प्रविश्य च सा नरपतिसहस्रमध्यवर्तिनमशनिभयपुंजितकुलशैलमध्यगतमिव कनकशिखरिणम्, अनेकरत्नाभरणकिरणजालकान्तरितावयवमिन्द्रायुधसहस्रसंछादिताष्टदिग्भागमिव जलधरसमयदिवसम्, अवलम्बितस्थूलमुक्ताकलापस्य कनकश्रृङ्खलानियमितमणिदण्डिकाचतुष्टयस्य गगनसिन्धुफेनपटलपाण्डुरस्य नातिमहतो दुकूलवितानस्याधस्तादिन्दुकान्त-

मणिपर्यङ्किकानिषण्णम्, उद्धूयमानकनकदण्डचामरकलापम्, रुन्मयूखमुखकान्तिविजयपराभवप्रणते, शशिनीव स्फटिकादिपीठे विन्यस्तवामपादम्, इन्द्रनीलमणिकुट्टिमप्रभासंपर्कश्यामायमानैः प्रणतरिपुनिःश्वासमलिनीकृतैरिव चरणनखमयूखजालैरुपशोभमानम्, आसतोल्लसितपद्मरागकिरणपाटलीकृतेनाचिरमृदितमधुकैटभरुधिरारुणेन हरिमिवोरुयुगलेन विराजमानम्, अमृतफेनधवले गोरोचनालिखितहंसमिथुनसनाथपर्यन्ते चारुचामरपवनप्रनर्तितदेशे दूकूले वसानम्, अतिसुरभिचन्दनानुलेपनधवलितोरःस्थलम्, उपरिविन्यस्तकुंकुमस्थासकमन्तरान्तरानिपतितबालातपच्छेदमिव कैलासशिखरिणम्, अपरशशिशङ्कया नक्षत्रमालयेव हारलतयाकृतमुखपरिवेषम्, अतिचपलराजलक्ष्मीवन्धननिगडकटकशङ्कामुपजनयतेन्द्रनीलकेयूरयुगलेन मलयजरसगन्धलुब्धेन भुजङ्गद्वयेनेव वेष्टितबाहुशिखरम्, ईषदालम्बिकर्णोत्पलम्, उन्नतघोणम्, उत्फुल्लपुण्डरीकलोचनम्, अमलकलधौतपट्टायतमष्टमीचन्द्रशकलाकारमशेषभुवनराज्याभिषेकसलिलपूतमूर्णासनाथं ललाटदेशमुद्वहन्तम्, आमोदिमालतीकुसुमशेखरमुषसि शिखरपर्यस्ततारकापुञ्जमिव पश्चिमाचलम्, आभरणप्रभापिशङ्गिताङ्गतया लग्नहरहुताशमिव मकरध्वजम्, आसन्नवर्तिनीभिः सर्वतः सेवार्थमागताभिरिव दिग्वधूभिर्वारविलासिनीभिः परिवृतम्, अमलमणिकुट्टिमसंक्रान्तसकलदेहप्रतिविम्बतया पतिप्रेम्णा वसुन्धरया हृदयेनेवोह्यमानम्; अशेषजनभोग्यतामुपनीतयाप्यसाधारणया राजलक्ष्म्या समालिङ्गितदेहम्, अपरिमितपरिवार-

जनमप्यद्वितीयम्, अनन्तगजतुरगसाधनमपि खड्गमात्रसहायम्, एकदेशस्थितमपि व्याप्तभुवनमण्डलम्, आसनगतमपि धनुषि निषण्णम्, उत्सादिताशेषद्विषदिन्धनमपि ज्वलत्प्रतापानलम्, आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपितमपि कलत्रवल्लभम्, अविरतप्रवृत्तदानमप्यमदम्, अतिशुद्धस्वभावमपि कृष्णचरितम्, अकरमपि हस्तस्थितसकलभुवनतलं राजानमद्राक्षीत्।

आलोक्य च सा दूरस्थितैव प्रचलितरत्नवलयेन रक्तकुवलयदलकोमलेन पाणिना जर्जरितमुखभागां वेणुलतामादाय नरपतिप्रबोधनार्थमसकृत्सभाकुट्टिममाजघान । येन सकलमेव तद्राजमेकपदे वनकरियूथमिव तालशब्देन तेन वेणुलताध्वनिना युगपदावलितवदनमवनिपालमुखादाकृष्य चक्षुस्तदभिमुखमासीद्।

अवनिपतिस्तु 'दूरादालोकय' इत्यभिधाय प्रतीहार्या निर्दिश्यमानां तां वयःपरिणामपाण्डुरशिरसा रक्तराजीवेक्षणापाङ्गेनानवरतकृतव्यायामतया यौवनापगमेऽप्यशिथिलशरीरसंधिना सत्यपि मातङ्गत्वे नातिनृशंसाकृतिनानुगृहीतार्यवेषेण धवलवाससा पुरुषेणाधिष्ठितपुरोभागाम्, आकुलाकुलकाकपक्षधारिणा कनकशलाकानिर्मितमप्यन्तर्गतशुकप्रभाश्यामायमानं, मरकतमयमिव पंजरमुद्वहता चाण्डालदारकेणानुगम्यमानाम्, असुरगृहीतामृतापहरणकृतकपटपटुविलासिनीवेषस्य श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम्, संचरिणीमिवेन्द्रनीलमणिपुत्रिकाम्, आगुल्फावलम्बिना नीलकंचुकेनावच्छन्नशरीरामुपरि रक्तांशुक

रचितावगुण्ठनां नीलोत्पलस्थलीमिव निपतितसंध्यातपाम्, एककर्णावसक्तदन्तपत्रप्रभाधवलितकपोलमण्डलाम् उद्यदिन्दुकिरणच्छुरितमुखीमिव विभावरीम्, आकपिलगोरोचनारचिततिलकतृतीयलोचनामीशानरचितानुरचितकिरातवेषामिव भवानीम्, उरःस्थलनिवाससंक्रान्तनारायणदेहप्रभाश्यामलितामिव श्रियम्, कुपितहरहुताशनदह्यमानमदनधूममलिनीकृतामिव रतिम्, उन्मदहलिहलापकर्षणभयप्रपलायितामिव यमुनाम्, अतिबहलपिण्डालक्तकरसरागपल्लवितपादपङ्कजाम् चिरमृदितमहिषासुररुधिरारक्तचरणामिव कात्यायनीम्, आलोहितांगुलिप्रभापाटलितनखमयूखामतिकठिनमणिकुट्टिमस्पर्शमसहमानां क्षितितले पल्लवभङ्गानिव निधाय संचरन्तीम् आपिंजरेणोत्सर्पिणा नूपुरमणीनां प्रभाजालेन रंजितशरीरतया पावकेनेव भगवता रूप एव पक्षपातिना प्रजापतिमप्रमाणीकुर्वता जातिसंशोधनार्थमालिङ्गितदेहाम्, अनङ्गवारणशिरोनक्षत्रमालायमानेन रोमराजिलतालवालकेन मेखलादाम्ना परिगतजघनस्थलीम्, अतिस्थूलमुक्ताफलघटितेन शुचिना हारेण गंगास्रोतसेव कालिन्दीशङ्कया कृतकण्ठग्रहाम्, शरदमिव विकसितपुण्डरीकलोचनाम्, प्रावृषमिव घनकेशजालाम्, मलयमेखलामिव चन्दनपल्लवावतंसाम्, नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्, श्रियमिव हस्तस्थितकमलशोभाम्, मूर्छामिव मनोहारिणीम्, अरण्यभूमिमिवाक्षतरूपसंपन्नाम्, दिव्ययोषितमिवाकुलीनाम्, निद्रामिव लोचनग्राहिणीम्, अरण्यकमलिनीमिव मातंग-

कुलदूषिताम्, अमूर्तामिव स्पर्शवर्जिताम्, आलेख्यगतामिव दर्शनमात्रफलाम्, मधुमासकुसुमसमृद्धिमिव विजातिम्, अनंगकुसुमचापलेखामिव मुष्टिग्राह्यमध्याम्, यक्षाधिपतिलक्ष्मीमिवालकोद्भासिनीम्, अचिरोपरूढयौवनाम्, अतिशयरूपाकृतिमनिमेषलोचनो ददर्श।

समुपजातविस्मयस्य चाभून्मनसि महीपतेः—'अहो विधातुरस्थाने रूपनिष्पादनप्रयत्नः। तथाहि यदि नामेयमात्मरूपोपहसिताशेषरूपसंपदुत्पादिता किमर्थमपगतस्पर्शसंभोगसुखे कृतं कुले जन्म। मन्ये च मातंगजातिस्पर्शदोषभयादस्पृशतेयमुत्पादिता प्रजापतिना। अन्यथा कथमियमक्लिष्टतां लावण्यस्य। न हि करतलस्पर्शक्लेशितानामवयवानामीदृशी भवति कान्तिः। सर्वथा धिग्विधातारमसदृशसंयोगकारिणमतिमनोहराकृतिरपि क्रूरजातितया येनेयमसुरश्रीरिव सततनिन्दितसुरता रमणीयाप्युद्वेजयति।' इत्येवमादि चिन्तयन्तमेव राजानमीषदवगलितकर्णपल्लवावतंसा प्रगल्भवनितेव कन्यका प्रणनाम। कृतप्रणामायां च तस्यां मणिकुट्टिमोपविष्टायां स पुरुषस्तं विहंगमादाय पंजरगतमेव किंचिदुपसृत्य राज्ञे न्यवेदयदब्रवीच्च—'देव, विदितसकलशास्त्रार्थो राजनीतिकुशलप्रयोगः पुराणेतिहासकथाकलापनिपुणो वेदिता गीतश्रुतीनां काव्यनाटकाख्यायिकाख्यानकप्रभृतीनामपरिमितानां सुभाषितानामध्येता स्वयं च कर्ता परिहासालापपेशलो वीणावेणुनिपुणश्चित्रकर्मणि प्रवीणो द्यूतव्यापारेप्रगल्भः प्रणयकलहकुपित-

कामिनीप्रसादनोपायचतुरो गजतुरगपुरुषस्त्रीलक्षणाभिज्ञः सकलभूतरत्नभूतोऽयं वैशम्पायनो नाम शुकः। सर्वरत्नानां चोदधिरिव देवो भाजनमिति कृत्वैनमादायास्मत्स्वामिदुहिता देवपादमूलमायाता। तदयमात्मीयः क्रियताम्' इत्युक्त्वा नरपतेः पुरो निधाय पंजरमसावपससार।

अपसृते च तस्मिन् स विहङ्गराजो राजाभिमुखो भूत्वा समुन्नमय्य दक्षिणं चरणमतिस्पष्टवर्णस्वरसंस्कारया गिरा कृतजयशब्दो राजानमुद्दिश्यार्यामिमां पपाठ—

स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्॥

—कादम्बरी

७—संध्यावर्णनम्

अनेन च समयेन परिणतो दिवसः। स्नानोत्थितेन मुनिजनेनार्घविधिमुपपादयता यः क्षितितले दत्तस्तमम्बरतलगतः साक्षादिव रक्तचन्दनाङ्गरागं रविरुदवहत्। ऊर्ध्वमुखैरर्कबिम्बविनिहितदृष्टिभिरुष्मपैस्तपोधनैरिव परिपीयमानतेजःप्रसरो विरलातपो दिवसस्तनिमानमभजत्। उद्यत्सप्तर्षिसार्थस्पर्शपरिजिहीर्षयेव संहृतपादः पारावतचरणपाटलरागो रविरम्बर-

तलादलम्बत। आलोहितांशुजालं जलशयनगतस्य मधुभिदो विगलन्मधुधारमिव नाभिनलिनं प्रतिमागतमपरार्णवे सूर्यमण्डलमलक्ष्यत। विहाय धरणितलमुन्मुच्य कमलिनीवनानि शकुनय इव दिवसावसाने तपोवनतरुशिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत। आलग्नरक्तातपच्छेदा मुनिभिरालम्बितालोहितवल्कला इवाश्रमतरवः क्षणमशोभन्त।

अस्तमुपगते च भगवति सहस्रदीधितावपरार्णवतलादुल्लसन्ती विद्रुमलतेव पाटला संध्या समदृश्यत। यस्यामावध्यमानध्यानमेकदेशदुह्यमानहोमधेनुदुग्धधाराध्वनितधन्यतरातिमनोहरमग्निहोत्रवेदीविकीर्यमाणहरितकुशमृषिकुमारिकाभिरितस्ततो विक्षिप्यमाणदिग्देवताबलिसिक्थमाश्रमपदमभवत्। क्वापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना संध्या मुनिभिरदृश्यत। अचिरप्रोषिते सवितरि शोकविधुरा कमलमुकुलकमण्डलुधारिणी हंससितदुकूलपरिधाना मृणालधवलयज्ञोपवीता मधुकरमण्डलाक्षवलयमुद्वहन्ती कमलिनी दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत्। अपरसागराम्भसि पतिते दिनकरे पतनवेगोत्थितमम्भःसीकरनिकरमिव तारागणमम्बरमधारयत्। अचिराच्च सिद्धकन्यकाविक्षिप्तसंध्यार्चनकुसुमशबलमिव तारकितं वियदराजत। क्षणेन चोन्मुखेन मुनिजनेनोर्ध्वविप्रकीर्णैः प्रणामाञ्जलिसलिलैः क्षाल्यमान इवागलदखिलः संध्यारागः।

क्षयमुपागतायां संध्यायां तद्विनाशदुःखिता कृष्णाजिनमिव विभावरी तिमिरोद्गममभिनवमवहत । अपहाय मुनिजन-हृदयानि सर्वमन्यदन्धकारतां तिमिरमनयत् । क्रमेण च रविरस्तमुपागत इत्युदन्तमुपलभ्य जातवैराग्यो धौतदुकूल-वल्कलधवलाम्बरः सतारान्तःपुरपर्यन्तस्थिततनुतिमिरतमाल-वनलेखं सप्तर्षिमण्डलाध्युषितमरुन्धतीसंचरणपवित्रमुपहिताषा-ढमालक्ष्यमाणमूलमेकान्तस्थितचारुतारकमृगममरलोकाश्रममिव—गगनतलममृतदीधितिरध्यतिष्ठत् । चन्द्राभरणभृतस्तारकाकपाल-शकलालंकृतादम्बरतलात्त्र्यम्बकोत्तमाङ्गादिव गंगा सागराना-पूरयन्ती हंसधवला धरण्यामपतज्ज्योत्स्ना । हिमकरसरसि विकचपुण्डरीकसिते चन्द्रिकाजलपानलोभादवतीर्णो निश्चलमूर्ति-स्मृतपङ्कलग्न इवादृश्यत हरिणः । तिमिरजलधरसमयापगमा-नन्तरमभिनवसितसिन्धुवारकुसुमपाण्डुरैरर्णवागतैरगाह्यन्त हंसै-रिव कुमुदसरांसि चन्द्रपादैः । विगलितसकलोदयरागं रजनिकरबिम्बमम्बरापगावगाहधौतसिन्दूरमैरावतकुम्भस्थलमिव तत्क्षणमलक्ष्यत ।

—कादम्बरी

———

८—शुकनासोपदेशः

तात चन्द्रापीड विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति । केवलं च निसर्गत एवाभानुभेद्य-

मरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभव मित्यतो विस्तरेणाभिधीयसे । गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वम प्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा सर्वाविनयानामेकैकमप्येषामायतनं किमुत समवायः। यौवना रम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः। अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूर मात्मेच्छया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः। इन्द्रियहरिणहारिणी च सततमतिदुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका । नवयौवनकषा यितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्य मानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः पुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु । गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य। भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम् । अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखमुपदेशगुणाः। अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य । गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानमनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वमनारोपितमेदोदोषं गुरुकरणमसुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणमतीतज्योतिरालोको नोद्वेगकरः प्रजागरः। विशेषेण तु राज्ञाम् । विरला हि तेषामुपदेष्टारः । अहंकारदाहज्वरमूर्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः । अलीकाभिमानोन्मादकारीणि धनानि । राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः ।

आलोकयतु तावत्कल्याणाभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्। न ह्येवंविधमपरमपरिचितमिह जगति किंचिदस्ति यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। दृढगुणपाशसंदाननिष्पन्दीकृतापि नश्यति। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न वैदग्ध्यं गणयति। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। कमलिनीसंचरणव्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकेन न क्वचिन्निर्भरमाबध्नाति पदम्। यथा यथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढो यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति पुस्तकमय्यपीन्द्रजालमाचरत्युत्कीर्णापि विप्रलभते श्रुताप्यभिसंधत्ते चिन्तितापि वंचयति।

एवंविधयाऽपि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति। तेषां दाक्षिण्यं प्रक्षाल्यते, हृदयं मलिनीभवति सत्यवादितापह्रियते, गुणाश्चोत्सार्यन्ते। केचिच्छ्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटचपलाभिः खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिर्मनस्विजनगर्हिताभिः सपद्भिः प्रलोभ्यमाना रागावेशेन बाध्यमाना विह्वलतामुपयान्ति। आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति। अदूरदर्शिनः पापेनेवाध्मातमूर्तयो भवन्ति। तदवस्थाश्च व्यसनशतशरव्यतामुपगतावल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति।

अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशितग्रासगृध्रैरास्थाननलिनीवकैर्द्यूतं विनोद इति, पानं विलास इति, प्रमत्तता शौर्यमिति, गुरुवचनावधीरणमपरप्रणेयत्वमिति, स्वच्छन्दता प्रभुत्वमिति, तरलतोत्साहमिति दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः प्रतारणकुशलैर्धूर्तैरमानुषोचिताभिः स्तुतिभिः प्रतार्यमाणाः प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः सर्वजनस्यापहास्यतामुपयान्ति। दर्शनप्रदानमप्यनुग्रहं गणयन्ति। दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति। स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति। मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यो नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्नाभ्युपतिष्ठन्ति गुरून् जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम्। आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय। कुप्यन्ति हितवादिने। सर्वथा तमभिनन्दन्ति तं पार्श्वे कुर्वन्ति तं संवर्धयन्ति तं बहु मन्यन्ते तमाप्ततामापादयन्ति योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्तव्यः स्तौति यो वा माहात्म्यमुद्भावयति।

तदेवंप्राये राज्यतंत्रेऽस्मिन्महामोहकारिणि च यौवने कुमार तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैर्नोपालभ्यसे सुहृद्भिर्न प्रतार्यसे विटैर्नावलुप्यसे सेवकवृकैर्न प्रलोभ्यसे वनिताभिर्नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन नाक्षिप्यसे विषयैर्न विकृष्यसे रागेण नापह्रियसे सुखेन। कामं भवान्प्रकृत्यैव धीरः। पित्रा च महता प्रयत्नेन समारोपितसंस्कारः। तरलहृदयमप्रतिबुद्धं च मदयन्ति धनानि। तथापि भवद्गुणसंतोषो मामेवं मुखरीकृतवान्

इदमेव च पुनःपुनरभिधीयसे। विद्वांसमपि धीरमप्यभिजातमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति। सर्वथा कल्याणै पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान्नवयौवराज्याभिषेकः-मंगलम्। कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढां धुरम्, अवनमय द्विषतां शिरांसि। उन्नमय बन्धुवर्गम्। अभिषेकानन्तरं च प्रारब्धदिग्विजयः परिभ्रमन्विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीप-भूषणां पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्। अयं च ते कालः प्रताप-मारोपयितुम्। आरूढप्रतापो हि राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति इत्येतावदभिधायोपशशाम।

—कादम्बरी

———

६—भूषणकवेः शिवराजेन सह समागमः

अथैकदा रजन्यां सिंहदुर्गाविदूर एव सुकोमलशाद्वलायां कलितप्रसादायां भुवि, निष्कृपकृपाणपाणि, कंचुकाच्छादित-कठिनकवचः, कलितसैनिकभटवेषः श्रीशिववीरो गुप्तवेषेण परितः पर्यटन् दुग्धधारयेव क्षालितैर्ज्योत्स्नया प्रकाशितैः पथिभिरासन्नात् शिवमन्दिरादारादाजगाम। तत्र च द्वारि रेणुरूषितरोमकुहरम्, शफोत्फालितमृत्स्नास्नातम्, त्वरितगतिश्वास-प्रश्वाससहचरितहिणत्कारसूचितक्लमम्, उत्थायोत्थाय पृष्ठमुत्कम्प्य ग्रीवाममुद्धूय पौनःपुन्येन पतित्वा भुवि विलुठन्तं कंचनाश्वमद्राक्षीत्। कस्यायं कुतोऽयमिति मनसि विचिन्वंश्च समीपमागत्य चुचुत्कारैरश्वं सान्त्वयन्तम्, हरिततृणभारं च पुरतः प्रक्षिपन्तं कमपि शूद्रयुवकमप्यवालोकयत्। तं च विवर्णवदनमाजानुधूलिधूसरितचरणयुगलं। मन्थरितशरीरं स्वेदक्लिन्नं चावलोक्य दूरतः कश्चन समायातोऽस्ति तद्भृत्य एवायमिति निश्चित्य शनैरप्राक्षीत् 'कस्यायमश्वः' इति। स तु स्वकार्यसंलग्नोऽन्यमनस्क एवं 'समायातः कोऽपि' इत्युदतरत्। पुनरपि 'कुत आगता यूयम्' इति पृच्छति शिववीरे च किमिव निरर्थं प्रश्नानुद्दङ्कयसि ? आलपितुमिच्छसि चेद् घटिकायुगलमतिवाह्य समायास्यसि, यथा पूरितजठरपिटकस्ताम्रकधूमपानैर्गलनलं कवोष्णयन्, त्वया सह वार्ताभिरध्वपरिश्रममल्पयिष्यामि।' तदाकर्ण्यान्तर्विहसन्निव शिववीरः 'तथा करिष्यावः,

किन्तु कथय तावत् कुत आगता यूयम्' इति पुनरप्यपृच्छत्। स तु घोटके दत्तदृष्टिरेव सकोपमवादीत्। 'कुत आगता यूयम्, कुत आगता यूयमिति कुतःकारैः स्फोटितौ मे कर्णौं। वयं दिल्लीत आगता दिल्लीतो दिल्लीतो दिल्लीतः। कथय किं गजं ददासि घोटकं वा?' तदाकर्ण्य शिववीरस्तत्प्रकृतिं परिज्ञाय शनैः परिवृत्य मन्दिरस्य पश्चिमदेशे पर्यटितुमारेभे।

'कोऽयं, कुतोऽयं, चरो वा, सन्देशहरो वा, कपटपथिको वा, अस्मत्पक्षपाती वा, शत्रुपदातिर्वा, कोऽप्युभयपक्षोदासीनो वेति सद्य एव विज्ञेयम्' इति विचारयन् मन्दिरपाश्चात्यप्राचीरगवाक्षादायान्तं कंचिदस्पष्टालापध्वनिमश्रोषीत्। क्षणं विरम्य च गवाक्षसमीपमागत्य ध्वनिप्रतिध्वनिभिरव्यक्तांशबहुलामप्येवमुक्तिं निश्चिच्ये यत् 'चिराय दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतलजच्छायामध्युषितोऽस्मि। परं न वयं कवयः कस्यापि राजत्वं वा वीरत्वं वा पक्षापित्वं वा आढ्यत्वं वाऽपेक्षामहे। न वा कस्यापि साभिमानभ्रूभङ्गमुत्तुङ्गकोपाञ्चिताऽखर्वगर्वबर्वरतां वा सहामहे। न तस्य तादृशं भूवलये राज्यं यादृशमस्माकं सारस्वतसृष्टौ। न तस्य क्रीतदासा अपि तदीहासमकालमेव बद्धकरसम्पुटा यथोचितावस्थानाः पुरतोऽवतिष्ठन्ते, यथास्माकं पदानि वाक्यानि छन्दांस्यलंकारा रीतयो गुणा रसाश्च। स दीनारसंभारैरपि न तथा परांस्तोषयितुमलं, यथा वयं केवलं वचनभङ्गीभिरेव पारयामः। अस्मद्वीररसकवितां चाकलय्य म्रियमाणोऽपि युद्धे उत्तिष्ठेत्। यस्य भाग्ये चिरावस्थायिनी

कीर्तिः समुद्रकल्लोलाघातसहं च यशः स एवास्मानाद्रियते। न वयं मीनानिव पीनान्, इभानिव तुन्दिमान्, भेकानिव निर्विवेकान्, वृषदंशकानिव कपटहिंसकान्, काकानिवास्वादित-दुर्विपाकान्, बलीमुखानिव चंचलमुखान्, शृगालानिव कलितधूर्त्ततामालान्, द्विजिह्वानिव द्विजिह्वान्, सजीवानिवोप-बर्हान्, आत्मस्तुतिमात्ररुचीन्, मूर्तिमत ईवाभिमानान्, विद्याशून्यान्, गुणिगणगुणग्रहणासमर्थान्, मिथ्यामोदरतान्, मद्यकीटान्, नृपंमन्यान्, स्वप्नेऽपि समुपास्महे। दिल्लीश्वर-पदविडम्बनमपि चाहं तादृशेष्वेवान्यतममवगत्य क्षणेनैव तत्सम्बन्धसूत्रं त्रोटयित्वा रसिकान्तरं कमपि वीरमन्विष्यन् दक्षिणां दिशं प्रस्थितोऽस्मि। पथि चामेरदेशाधीशेन बहुशः प्रार्थ्यमानोऽपि स तस्यैव दिल्लीवलयकलङ्कस्य लालाटिक इत्यवगत्य शिववीरकीर्त्तीश्च श्रात्रं श्रावं कर्णयोराकृष्ट इव इतः समायातोऽस्मि', इति वक्तारं कमपि कविं त्यक्तदिल्लीश्वरद्वार निजं दिदृक्षुमत्रागतमूरीकृत्य प्रदक्षिणच्छलेन पान्थाध्युषितप्रदेश-मागत्य तेनालपन्तं शिवमन्दिराध्यक्षं प्रणम्य बद्धाञ्जलिरागन्तु-कमपि 'कुतः श्रीमान् ? कः श्रीमान् ?' इति सादरं समपृच्छत।

शिववीरस्तु तेन सह चिरमालप्य तस्य वृत्तान्तमवस्थां प्रकृतिं चावगत्य चिराय श्रुतचरं भूषणकविरित्यभिधानं चोररीकृत्य 'श्वो द्रष्टा भवान्' 'शिवराजम्' इत्यभिधाय न्यवर्त्तिष्ट। निवर्त्तमानश्च तेनापि 'को भवान्' इति पृष्टः। एतद्देशीयः कोऽपि वीरोऽस्मि' इत्युदतीतरत्।

प्रातरेव च नित्यनियमान्निवृत्य स्वेष्टजनसहितः सभासंस्थ एव स्वभृत्येन भूषणकविमाकारयत् । स तु बद्धमहोष्णीषः पादाग्रपर्यन्तविलम्बमानकंचुको नारिकेलफलसारसहितं यज्ञोपवीतयुगलं हस्ते आदधानो द्वारपालदर्शितेन पथा सभां प्रविश्य 'विजयतां महाराजः' इति सिंहगर्जनमवधीरयता स्वरेणोच्चैरुच्चार्य स्वोपहारं महाराजहस्ते आर्पयत् ।

निर्दिष्टस्थान उपविश्य च स एवायं पूर्वदृष्टो वीर इति निरीक्ष्य 'विजयतां धर्मोद्धारणधीरो सपत्नोत्सारणसमीरो वीरो महाराजः' इत्युदीर्य च किञ्चित् स्मयमानस्य महाराजस्य मुखमवलोकयंस्तत्प्रशंसायां स्वनूतनरचितां वीररसमयीं कवितामेकामपठत् । महाराजस्तु साधुसाध्विति व्याहृत्य पुनः पठितुमाज्ञप्तवान् । पठितवति च तस्मिन् सर्वेषु प्रसन्नेषु पुनरप्यादिशत् । इत्येवं विंशतिवारं तेन सा व्रजभाषामयी कवित्वकामनामिका वृत्तिरपाठि । महाराजेन च तस्मै गजानां विंशतिर्वितीर्णेत्यद्यापि प्रसिद्धं कवितारसिकानां मण्डले तदेव च दिनमारभ्य तेन भूषणकविः स्वसभायां संस्थापितः ।

—शिवराजविजयः

—

१०—उद्भिज्ज-परिषत्

अथ तस्य महारण्यस्य सुदूरमध्यभागे सर्वथाप्राणि-सम्बन्धरहिते कस्मिंश्चिदेकान्तकान्तारे समवेतसभ्यनिवहानिव श्रेणीबन्धावस्थितान्, एकतानचेतसा किमिवाकर्णयत इव निश्चलनिष्पंदान्, संजातपुलकानिव निश्चलोद्ध्र्वीकृतपत्रान्, क्वचित्क्वचिदनुमोदयत इवेषत्संचालितशिरोभागानवसरेषु प्रमोदमानानिव संघर्षितपल्लवकराग्रान् सर्वविधविटपिनोऽपश्याम। तेषामपि मध्यभागे व्याख्यानकृदिवेस्ततः संचालितपल्लवकराग्रः सुमहानश्वत्थो वदति—भो भो वनस्पतिकुलप्रदीपाः महापादपाः, कुसुमकोमलदन्तरुचो लताकुलललनाश्च, सावहिताः शृण्वन्तु भवन्तः। अद्य मानववार्तैवास्मत्समालोच्यविषयः। मानवा नाम सर्वासु सृष्टिधारासु निकृष्टतमा सृष्टिः। समन्तादभिनवोत्तरविलक्षण-सृष्टिमुत्पादयता भगवता जगत्सवित्रा यादृग बुद्धिप्रकर्षः सृष्टिनैपुण्यं च प्रदर्शितम्, मानवसर्गं विदधता पुनरनेन तत्सर्वमेकपद एवापहारितम्।

प्राक्तनकर्मप्रभावाज्जडत्वमापन्नानामस्माकं वार्ता तावदस्तु दूरे, जीवसृष्टिप्रवाहेषु मानवा इव परप्रतारकाः स्वार्थसाधनपरा मायाविनः कपटव्यवहारकुशलाः हिंसानिरता जीवा न विद्यन्ते। भवन्तो नित्यमेवारण्यचारिणः सिंहव्याघ्रप्रमुखान् हिंस्रस्वभावतया प्रसिद्धान् श्वापदानवलोकयन्ति प्रत्यक्षम्,

तेषांनित्यनैमित्तिकक्रियाकलापांश्च पश्यन्ति, ततो भवन्त एव सानुनयं पृच्छ्यन्ते—कथयन्तु भवन्तो याथातथ्येन किमेते हिंसादिक्रियासु मनुष्येभ्यो भृशं गरिष्ठाः? श्वापदानां हिंसाकर्म किल प्रकृतिनियमोद्दीप्तजठरानलनिर्वाणमात्रप्रयोजनकम्, क्रूरचेष्टितानि च स्वोदरपूर्तिपर्यन्तावसानानि, प्रशान्ते जठरानले सकृदुपजातायां स्वोदरपूर्तौ नहि ते करतलगतानपि-हरिणशशकादीनुपघ्नन्ति. न वा तथाविधदुर्बलजीवघातार्थ-मटवीतोऽटवीं समुद्धतं परिभ्रमन्ति प्रत्युत मुनिव्रता इव शान्तभावमापन्ना निश्चेष्टा विविक्तविजनप्रदेशमाश्रित्य विश्राम्यन्ति।

मनुष्याणां हिंसावृत्तिस्तु निरवधिः। पशुहत्या तु तेषामाक्रीडनम्, केवलं विक्लान्तचित्तविनोदाय महारण्यमुपगम्य ते यथेच्छं निर्दयं च पशुघातं कुर्वन्ति। मनुष्या यथा मृगयामपदिश्य हिंसावृत्तेश्चरितार्थतां संपादयन्ति, हिंस्रस्वभावा अपि श्वापदाः किं कदाचित् मनुष्यालयमाविश्य तादृशमतिदारुणं कर्म समनुतिष्ठन्ति? यथैहिकसुखलिप्सया मनुष्याः समुत्साहेन जीवहिंसां संपाद्यान्तःकरणस्यातिनिष्ठुरं क्रूरभावं प्रकटयन्ति पारत्रिकविशुद्धनित्यसुखप्राप्त्याशयापि ते तथैव महोत्साहेन महोत्साहपूर्वकं स्वाभीष्टदेवताग्रतः सर्वथानिरपराधान् रोरुद्यमानानासन्नमृत्युशङ्कावेपमानकलेवरान् पशून् बलादुपहृत्य स्वहृदयस्यातिकर्कशनृशंसतायाः परिचयं ददति। वस्तुतस्तेषां पशूपहारव्यापारमालोक्य जडानामप्यस्माकं विदीर्यते खलु हृदयम्।

पशूनां न केवलं भक्ष्यनियमस्तृप्तिश्च तेषामनायाससाध्या, ते स्वोदरपूर्तिमात्रपर्याप्तं भक्ष्यवस्तु समधिगत्यैव परमां परितृप्तिं लभन्ते, नाधिकमाकांक्षन्ति। भक्ष्यवस्तुनीवान्यन्यत्र विषयेष्वपि सुलभः खल्वमीषां तृप्तियोगो यस्तावन्मानवेषु सुदुर्लभ एव। तृप्ति-लाभस्तु न विलिखितो विधात्रा मनुष्यभागधेयेषु। निरन्तरमात्मो-न्नतिमभिविधित्सवोऽव्याहतलोभविक्षोभितहृदया मनुजन्मानः किल प्रतिक्षणं स्वार्थसाधनाय सर्वात्मना प्रवर्त्तन्ते। न धर्ममनुधावन्ति, न सत्यमनुबध्नन्ति, परं तृणवदुपेक्षन्ते स्नेहम्, लोष्टवत् परित्यजन्ति शौचम्, अहितमिव परिहरन्त्यार्ज्जवम्, अमङ्गलमिवो-पघ्नन्ति विश्वासम्, न स्वल्पमपि बिभ्यति पापाचारेभ्यो, न किंचिदपि लज्जन्ते मुहुरनृतव्यवहारात्, न हि क्षणमपि विरमन्ति परपीडनात् न वा कदापि विमुखीभवन्ति महतोऽप्यकृत्यात्, केवलं सिसाधयिषन्ति स्वार्थम्। यथायथैव स्वार्थसिद्धिर्घटते तथातथैव परिवर्धतेऽमीषां गरीयसी विषयपिपासा।

न केवलमेते पशुभ्यो निकृष्टास्तृणेभ्योऽपि निस्सारा एव। तृणानि खलु प्रवलवात्योद्गमाव्यवहितपूर्वक्षणपर्यंतं न किंचिन्मात्रं विचलन्ति, न वा स्वल्पमात्रमपि विकम्पन्ते, किन्तु निर्भीकानीवाविशङ्कितचित्तानीव सर्वथा सुस्थिराण्यवतिष्ठन्ते, किं च वात्यया सह स्वशक्तितः सुचिरमभियुध्य संमुखसमर-प्रवर्तमाना वीरपुरुषा इव शक्तिक्षये क्षितितले निपतन्ति, न तु कदाचित्कापुरुषा इव स्वस्थानमपहाय द्रुतं प्रपलायन्ते। मनुष्याः पुनः स्वचेतसाग्रत एव सुदूरभविष्यत्कालसंघटिष्यमाणां कमपि

विपत्पातमाकलय्य परिकम्पमानकलेवरा भीतभीता निरन्तरगुरु-चिन्ताक्रांतहृदया दुःखदुःखेन समयमतिवाहयन्ति, परिकल्पयन्ति च पर्याकुला वह्वायासैर्बहुविधान् प्रतीकारोपायान् । येन मनुष्यजीवने शांतिसुखं मनोरथपथादतिक्रान्तमेव । अथ भवितव्यताया अवश्यम्भावितया,दुर्लङ्घ्यतया च नियतिनियमानां, तेषां सर्वप्रतीकारप्रयत्नान् विफलीकृत्य यदि कदाचित् समापतति तावत् तथाकथिताऽऽपत् तदा तेषामेकपद एवान्तर्धत्ते विद्यावत्ताभिमानः, खर्वीभवति तीक्ष्णबुद्धिनैपुण्यप्रभवो गर्वः, प्रलीयते च परिकल्पितात्मसर्वज्ञतासमुदितः सुमहानहङ्कारः । ततश्च समुदेति सद्य एव कोऽपि किंकर्तव्यविमूढभावजनितो हृदयावसादः, भृशं परिक्षीयते चिरपोषिता नास्तिक्यबुद्धिः, सुदूरमपगच्छति च सा परमेश्वरप्रतिद्वन्द्विता, येन ते तदानीमात्मत्राणाय बद्धाञ्जलयः प्रणमन्तः करुणं विलपन्तश्च शरणं समुपयान्ति जगच्छरण्यं जगदीश्वरम् । परित्यजन्ति च सर्वविधामात्मनिर्भरताम् । किमतः परममीषामसारताप्रतिपादने प्रमाणान्तरापेक्षा वर्तते ? अथ ये तावत्तृणेभ्योऽप्यसाराः पशुभ्योऽपि निकृष्टतरास्तृणादिसृष्टेरनन्तरं तथाविधजीवनिर्माणं विश्वविधातुः कीदृशं नाम बुद्धिमत्ताप्रकर्षं प्रकटयति ?

इत्येवं हेतुप्रमाणपुरस्सरं सुचिरं वहुविधं विशदं च व्याख्याय सभापतिरश्वत्थदेव उद्भिज्जपरिषदं विसर्जयामास ।

—प्रबन्धमञ्जरी

———

११—प्रणयपरतन्त्रा महाश्वेता

एतत्प्रायेण कल्याणाभिनिवेशिनः श्रुतिविषयमापतितमेव यथा विबुधसद्मन्यप्सरसोनाम कन्यकाः सन्ति। तासां चतुर्दश कुलानि। यत्तु सोममयूखसंभूतानामप्सरसां कुलं तस्मात्किरण-जलानुसारगलितेन सकलेनेव रजनिकरकलाकलापलावण्येन निर्मिता त्रिभुवननयनाभिरामा भगवती द्वितीयेयं गौरी गौरीति नाम्ना हिमकरकिरणावदातवर्णा कन्यका प्रसूता। तां च गंधर्व-कुलाधिपतिर्हंसो मन्दाकिनीमिव क्षीरसागरः प्रणयिनीमकरोत्। सा तु भगवता मरकतेनेव रतिः शरत्समयेनेव कमलिनी हंसेन संयोजिता सदृशसमागमोपजनितामतिमहतीं मुदमुपगत-वती। निखिलान्तःपुरस्वामिनी च तस्याभवत्।

तयोश्च तादृशयोर्महात्मनोरहमीदृशी विगतलक्षणा शोकाय केवलमनेकदुःखसहस्रभाजनमेकैवात्मजा समुत्पन्ना। तातस्त्वन-पत्यतया सुतजन्मातिरिक्तेन महोत्सवेन मज्जन्माभिनन्दितवान्। अवाप्ते च दशमेऽहनि कृतयथोचितसमाचारो महाश्वेतेति यथार्थमेव नाम कृतवान्। साहं पितृभवने बालतया कल-मधुरप्रलापिनी वीणेव गन्धर्वाणामङ्कादङ्कं संचरन्त्यविदितस्नेह-शोकायासमनोहरं शैशवमतिनीतवती। क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्।

अथ सकलजीवलोकहृदयानन्ददायकेषु मधुमासदिवसेष्वेकदाहमम्बया सह मधुमासविस्तारितशोभं प्रोत्फुल्लनवनलिनकुसुमकुवलयकह्लारमिदमच्छोदं सरः स्नातुमभ्यागमम् । अत्र च स्निग्धमनोहरतरोद्देशदर्शनलोभाक्षिप्तहृदया सह सखी जनेन व्यचरम् । एकस्मिंश्च प्रदेशे झटिति वनानिलेनोपनीतम्, निर्भरविकसितेऽति कानने‌ऽभिभूतान्यकुसुमपरिमलम्, अतिसुरभितयानुलिम्पन्तमिव तर्पयन्तमिव पूरयन्तमिव घ्राणेन्द्रियम्, अहमहमिकया मधुरकुलैरनुबध्यमानम्, अनाघ्रातपूर्वम्, अमानुपलोकोचितं कुसुमगन्धमभ्यजिघ्रम् ! कुतोऽयमित्युपारूढकुतूहला चाहं मुकुलितलोचना तेन कुसुमगन्धेन मधुकरीवाकृष्यमाणा, कौतुकतरला कतिचित्पदानि गत्वा, अलङ्कारमिव ब्रह्मचर्यस्य, यौवनमिव धर्मस्य, विलासमिव सरस्वत्याः, स्वयंवरपतिमिव सर्वविद्यानाम्, संकेतस्थानमिव सर्वश्रुतीनाम्, आत्मानुरूपेण सवयसाऽपरेण देवतार्चनकुसुमान्युच्चिन्वता तापसकुमारेणानुगतम्, अतिमनोहरं स्नानार्थमागतं मुनिकुमारकमपश्यम् ।

तेन च कर्णावतंसीकृतां वसन्तदर्शनानन्दितायाः स्मितप्रभामिव वनश्रियः, मलयमारुतागमनार्थलाजाञ्जलिमिव मधुमासस्य यौवनलीलामिव कुसुमलक्ष्म्याः, कृत्तिकातारास्तबकानुकारिणीम्, अमृतबिन्दुनिस्यन्दिनीम्, अदृष्टपूर्वां कुसुममञ्जरीमद्राक्षम् । 'अस्याः परिभूतान्यकुसुमामोदो नन्वयं परिमलः' इति मनसा निश्चित्य तं तपोधनयुवानमीक्षमाणाऽह-

मचिन्तयम् । 'अहोरूपातिशयनिष्पादनोपकरणकोषस्याक्षीणता विधातुः, यत्त्रिभुवनाद्भुतरूपसंभारं भगवन्तं कुसुमायुधमुत्पाद्य तदाकारातिरिक्तरूपराशिरयमपरो मुनिमायामयो मकरकेतुरुत्पादितः । मन्ये च सकलजगन्नयनानन्दकरं शशिबिम्बं विरचयता लक्ष्मीलीलावासभवनानि कमलानि सृजता प्रजापतिना प्रथममेतदाननाकारकरणकौशलाभ्यास एव कृतः। अन्यथा किमिव हि सदृशवस्तुविरचनायां कारणम् । अलीकं चेदं यथा किल सकलाः कलाः कलावतो बहुलपक्षे क्षीयमाणस्य रविरापिबतीति । ताः खल्वस्य गभस्तयः समस्ता वपुरिदमाविशन्तीति । कुतोऽन्यथा रूपापहारिणि क्लेशबहुले तपसि वर्तमानस्येदं लावण्यम् ?' इति विचिन्तयन्तीमेव मामविचारितगुणदोषविशेषो रूपैकपक्षपाती नवयौवनसुलभः कुसुमायुधः कुसुमसमयमद इव मधुकरीं परवशामकरोत् । विस्मृतनिमेषेण किंचिदामुकुलितपक्ष्मणा जिह्मिततरलतरतारासारोदरेण दक्षिणेन चक्षुषा सस्पृहमापिबन्तीव तमतिचिरं व्यलोकयम । अनन्तरं च मेऽन्तर्मदनावकाशमिव दातुमाहितसंताना निरीयुः श्वासमारुताः स्वेदसलिललवलेखाक्षालितेवागलल्लज्जा । मकरध्वजनिशितशरनिकरनिपातत्रस्तेवाकम्पत गात्रयष्टिः । तद्रूपातिशयं द्रष्टुमिव कुतूहलादालिङ्गनलालसेभ्योऽङ्गेभ्यो निरगाद्रोमाञ्चजालकम् । अशेषतः स्वेदाम्भसा धौतश्चरणयुगलादिव हृदयमविशद्रागः ।

आसीच्च मम मनसि—'शान्तात्मनि दूरीकृतसुरतव्यतिकरेऽस्मिञ्जने मां निक्षिपता किमिदमनार्येणासदृशमारब्धं

मनसिजेन। क्वेदमतिभास्वरं धाम तेजसां तपसां च, क्व च प्राकृतजनाभिनन्दितानि मन्मथपरिस्पन्दितानि। चित्रं चेदं यदहमेवमवगच्छन्त्यपि न शक्नोम्यात्मनो विकारमुपसंहर्तुम्। कथमनेन क्षणेनाकारमात्रालोकनाकुलीभूतमेवमस्वतन्त्रता-मुपैत्यन्तःकरणम्। कालो हि गुणाश्च दुर्निवारतामारोपयन्ति मदनस्य सर्वथा। यावदेव सचेतनास्मि, यावदेव च न परिस्फुट-मनेन विभाव्यते मे मदनदुश्चेष्टितलाघवमेतत्, तावदेवास्मात्प्र-देशादपसर्पणं श्रेयः। कदाचिदनभिमतस्मरविकारदर्शन-कुपितोऽयं शापाभिज्ञां करोति माम्। अदूरकोपा हि मुनिजन-प्रकृतिः।' इत्यवधार्यापसर्पणाभिलाषिण्यहमभवम्। अशेषजन-पूजनीया चेयं जातिरिति कृत्वा तद्वदनाकृष्टदृष्टिप्रसरम्, ईषदुल्लसितकर्णपल्लवोन्मुक्तकपोलमण्डलम्, आलोलालक-लतालसत्कुसुमावतंसम्, अंसदेशदोलायितमणिकुण्डलमस्मै प्रणाममकरवम्।

अथ कृतप्रणामायां मयि तमपि मद्विकारदर्शनापहृतधैर्यं प्रदीपमिव पवनस्तरलतामनयदनङ्गः। तदा तस्याप्यभिनवागतं मदनं प्रत्युद्गच्छन्निव रोमोद्गमः प्रादुरभवत्। वेपथुगृहीत व्रतभंगभीतेवाकम्पत करतलगताक्षमाला। तया तु तस्यातिप्रकटया विकृत्या द्विगुणीकृतमदनावेशा तत्क्षणमहम-वर्णनयोग्यां कामप्यवस्थामन्वभवम्। प्राप्तप्रसरा चोपसृत्य तं द्वितीयमस्य सहचरं मुनिबालकं प्रणामपूर्वकमपृच्छम्। 'भगवन् किमभिधानः कस्य चायं तपोधनयुवा? किंनामन्तरो

मयिरियमनेनावतंसीकृता कुसुममञ्जरी? जनयति हि मे मनसि महत्कौतुकमस्याः समुत्सर्पन्नसाधारणसौरभोऽयमनाघ्रातपूर्वो गन्ध' इति। सोऽब्रवीत् 'अयं श्वेतकेतोर्नामात्युदारतपसो मुनेरात्मजः. पुण्डरीको नाम। इयं च पारिजातनाम्नः पादपस्य मञ्जरी नन्दनवनदेवतयास्योपहारीकृतानेन कर्णपूरीकृता।'

इत्युक्तवति च तस्मिन् स तपोधनयुवा किंचिदुपदर्शितस्मितो मामवादीत्। अयि कुतूहलिनि. किमनेन प्रश्नायासेन? यदि रुचिरसुरभिपरिमला गृह्यतामियम्।' इत्युक्त्वा समुपसृत्यात्मीयाच्छ्रवणादपनीय मदीये श्रवणपुटे तामकरोत्। मम तु तत्करतलस्पर्शलोभेन तत्क्षणमपरमिव पारिजातकुसुममवतंसस्थाने पुलकमासीत्। स च मत्कपोलस्पर्शसुखेन तरलीकृतांगुलिजालकात्करतलादक्षमालां लज्जया सह गलितामपि नाज्ञासीत्। अथाहं तामसंप्राप्तामेव भूतलमक्षमालां गृहीत्वा सलीलं तद्भुजपाशसंदानितकण्ठग्रहसुखमिवानुभवन्ती दर्शितापूर्वहारलतालीलां कण्ठाभरणतामनयम्।

इत्थंभूते च व्यतिकरे छत्रग्राहिणी मामवोचत्—'भर्तृदारिके स्नाता देवी। प्रत्यासीदति गृहगमनकालः। तत्क्रियतां मज्जनविधिरिति'। अहं तु तेन तस्या वचनेन नवग्रहा करिणीव प्रथमाङ्कुशपातेनानिच्छया कथंकथमपि समाकृष्यमाणा तन्मुखाल्लावण्यामृतपङ्कमग्नामिव कपोलपुलककण्टकजालकलग्नामिव मदनशरशलाकाकीलितामिव सौभाग्यगुणस्यूतामिवातिकृच्छ्रेण दृष्टिमाकृष्य स्नातुमुदचलम्। उज्ज्वलितायां च

मयि द्वितीयो मुनिदारकस्तथाविधं तस्य धैर्यस्खलितमालोक्य किंचित्प्रकटितप्रणयकोप इवावादीत् ।

'सखे पुण्डरीक नैतदनुरूपं भवतः क्षुद्रजनक्षुण्ण एष मार्गः। धैर्यधनाः हि साधवः। किं यः कश्चित्प्राकृत इव विक्लवीभवन्तमात्मानं न रुणत्सि। कुतस्तवापूर्वोऽयमद्येन्द्रियोपप्लवो येनास्येवं कृतः क्व ते तद्धैर्यम्। क्वासाविन्द्रियजयः। क्व तद्वशित्वं चेतसः। क्व सा प्रशान्तिः। क्व तत्कुलक्रमागतं ब्रह्मचर्यम्। क्व सा सर्वविषयनिरुत्सुकता। क्व ते गुरूपदेशाः। क्व तानि श्रुतानि। क्व ता वैराग्यबुद्धयः। क्व तदुपभोग विद्वेषित्वम्। क्व सा सुखपराङ्मुखता। क्वासौ तपस्यभिनिवेशः। क्व सा संयमिता। क्व सा भोगानामुपर्यरुचिः। क्व तद्यौवनानुशासनम्। सर्वथा निष्फला प्रज्ञा। निर्गुणो धर्मशास्त्राभ्यासो निरर्थकः संस्कारो निरूपकारको गुरूपदेशविवेको निष्प्रयोजना प्रबुद्धता, यदत्र भवादृशा अपि रागाभिषङ्गैः कलुषीक्रियन्ते प्रमादैश्चाभिभूयन्ते। कथं करतलाद् गलितामपहृतामक्षमालामपि न लक्षयसि। अहो विगतचेतनत्वम्। अपहृता नामेयम्। इदमपि तावदपह्रियमाणमनयानार्यया निवार्यतां हृदयम्।'

इत्येवमभिधीयमानश्च तेन किंचिदुपजातलज्ज इव प्रत्यवादीत् 'सखे कपिञ्जल, किं मामन्यथा संभावयसि? नाहमेवमस्या दुर्विनीतकन्यकाया मर्शयाम्यक्षमालाग्रहणापराधमिमम्। इत्यभिधायालीककोपकान्तेन प्रयत्नविरचितभीषणभ्रुकुटिभूषणेन मुखशशिना मामवदत् — 'चञ्चले, प्रदेशादस्मादिमामक्षमालामदत्त्वा

पदात्पदमपि न गन्तव्यम्' इति । तच्च श्रुत्वाऽहमात्मकण्ठादुन्मुच्य मकरध्वजालास्यारम्भलीलापुष्पाञ्जलिमेकावलीं 'भगवन्! गृह्यतामक्षमाला' इति मन्मुखासक्तदृष्टेः शून्यहृदयस्यास्य प्रसारिते पाणौ निधाय स्वेदसलिलस्नाताऽपि पुनः स्नातुमवातरम्। उत्थाय च कथमपि प्रयत्नेन निम्नगेव प्रतीपं नीयमाना सखीजनेन बलादम्बया सह तमेव चिन्तयन्ती स्वभवनमयासिषम्।

गत्वा च प्रविश्य कन्यान्तःपुरमारुह्य कुमारीपुरप्रासादं विसर्ज्य च सखीजनं द्वारि निवारितशेषपरिजनप्रवेशा सर्वव्यापारानुत्सृज्यैकाकिनी मणिजालगवाक्षनिक्षिप्तमुखी तामेव दिशं तत्सनाथतया प्रसाधितामिव पूर्णचन्द्रोदयालंकृतामिव दर्शनसुभगामीक्षमाणा तस्माद्दिगन्तरादागच्छन्तमनिलमपि वनकुसुमपरिमलमपि शकुनिध्वनिमपि तद्वार्त्तां प्रष्टुमीहमाना तथैव तां तद्विरहातुरजीवितोद्गमरक्षावलीमिवाक्षावलीं कण्ठेनोद्वहन्ती तथैव च तया प्रस्तुततद्रहस्यालापयेव कर्णलग्नया पारिजातमञ्जर्या तथैव च तेन तत्करतलस्पर्शसुखजन्मना कदम्बमुकुलकर्णपूरायमाणेन रोमाञ्चजालेन कण्टकितैककपोलफलका निष्पन्दनमतिष्ठम्।

—कादम्बरी

गद्याचार्याणां विषये प्रसिद्धाः सूक्तयः

दण्डी

(१) कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः । कस्यापि

(२) त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः ।
त्रयोदण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ शार्ङ्गधरपद्धतिः

(३) जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्याभिधाऽभवत् ।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि ॥ कस्यापि

(४) आचार्यदण्डिनो वाचामाचान्तामृतसम्पदाम् ।
विकासो वेधसः पत्न्या विलासमणिदर्पणम् ॥ गंगादेवी

सुबन्धुः

(१) सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥ कविराजः

(२) प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपंचविन्यासवैदग्ध्यनिधिं प्रबन्धम् ।
सरस्वतीदत्तवरप्रसादाश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः ॥ वासव०

बाणभट्टः

(१) बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती चकास्ति यस्योज्ज्वलवर्णशोभम् ।
एकातपत्रं भुवि पुष्पभूतिवंशाश्रयं हर्षचरित्रमेव ॥ सोड्ढलः

(२) रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥ धर्म०

(३) हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
भवेत्कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥ त्रिलोचनः

(४) जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी वाणो बभूव ह ॥ गोवर्धना०

(५) वाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्। कस्यापि

(६) शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा।
धनुषेन गुणाढ्येन निःशेषो रंजितो जनः ॥ त्रिविक्रमभट्ट

(७) वाणीपाणिपरामृष्टवीणानिक्वाणहारिणीम्।
भावयन्ति कथं वान्ये भट्टबाणस्य भारतीम् ॥ गङ्गादेवी

व्याख्या

आचार्यानुशासनम्

तैत्तिरीय उपनिषद् का यह दीक्षान्त उपदेश, जो कि विद्याध्ययन समाप्त करके जाने वाले स्नातकों को दिया गया है, आजकल के किसी भी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण की अपेक्षा अधिक उत्तम है। गुरुकुल में रहकर विद्याध्ययन करने के उपरान्त गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करने वाले स्नातकों के लिये श्रेयस्कर बातें इस उपदेश में हैं। इस उपदेश में कही हुई सभी बातें चिरन्तन सत्य हैं। अतः ये सभी देश काल और भारत के विद्यार्थियों के लिये आध्यात्मिक और सांसारिक क्षेत्र में पथ-प्रदर्शक की तरह हैं। इसके अतिरिक्त, इन शिक्षाओं से हमें अध्ययन की प्राचीन रीति के संबंध में भी कुछ ज्ञान होता है।

तैत्तिरीय उपनिषद्, जिसमें से यह पाठ उद्धृत किया गया है, उपनिषदों के उस वर्ग में है जो कि रचना के ऐतिहासिक-क्रम से सबसे प्राचीन हैं। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से संबद्ध होने के कारण इसका नाम तैत्तिरीय उपनिषद् पड़ा। यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध और जनप्रिय उपनिषद् है। अत्यन्त सीधी और सरल भाषा में महान् धार्मिक और आध्यात्मिक तत्व का उद्घाटन करने के कारण ही यह उपनिषद् इतनी प्रसिद्ध है। इसकी सरल और अकृत्रिम शैली वर्ण्य विषय को हृदयङ्गम कराने में अत्यन्त सहायक होती है।

पृ० ४१ अनूच्य अध्याय—पढ़ाकर; अन्तेवासिनम्—गुरोरन्तेसमीपेवसतीति अन्तेवासी,सप्तम्यां अलुक्, शिष्यको; अनुशास्तिग्रन्थग्रहणादनु पश्चाच्छास्ति तदर्थंग्राहयतीत्यर्थः-उपदेश देता है (अध्ययन की समाप्ति पर), धर्मं चर—अपने धर्म का पालन करो, स्वाध्यात्—वेदों के अध्ययन से, मा प्रमदः—प्रमादं मा कार्षीः-(स्वाध्याय) का परित्याग मत करो, आचार्याय...आहृत्य-आचार्यार्थं प्रियमिष्टं धनमाहृत्यानीय दत्त्वा विद्या निष्क्रयार्थम्-गुरु को उनकी इच्छित दक्षिणा देने के बाद, प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः-आचार्येण चानुज्ञातोऽनुरूपान् दारानाहृत्य प्रजातन्तुं प्रजासन्तानं मा व्यवच्छेत्सीः प्रजासन्ततेर्विच्छित्तिर्न कर्तव्या—वंश परम्परा को नष्ट मत करो; सन्तानों की क्रमिक पंक्ति को मत काटो, न प्रमिदतव्यम्-प्रमादो न कर्तव्यः परित्याग न करो, भूत्यै मङ्गलयुक्तात्कर्मणः—उन्नति करने वाले कार्यों से, कुशलात्—आत्मरक्षात्कर्मणः अपना योगक्षेम करने वाले कर्मों से; चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के अनुसार 'समाज का योगक्षेम करने वाले कार्यों में से कोई कार्य करो।' कुशलान्न प्रमिदतव्यम्-अपने कल्याण से सम्बन्धित कार्यों की उपेक्षा मत करो। स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम्—स्वध्यायोऽध्ययनं प्रवचनमध्यापनं ताभ्याम् अध्ययन और अध्यापन में, देवपितृकार्याभ्याम्—देवताओं और पितृगणों के ऋण से, मातादेवो भव—मातृदेवो यस्य स त्वं मातृदेवो भव स्याः-माता का देवता की तरह सम्मान करो, अनवद्यानि न अवद्यानिनिन्दितानि इति-अनिन्दनीय, निर्दोष। सुचरितानि-अच्छे आचरण, उपास्यानि-अनुकरण किये जाने चाहिये। अस्मच्छ्रेयांसः-प्रशस्यतराः हमारी अपेक्षा अधिक प्रशंसा के पात्र, तेषां प्रश्वसितव्यम्तेषामाश्वासन-दानादिना त्वया प्रश्वसितव्यम्—प्रश्वसनं प्रश्वासः श्रमापनयः—तेषां श्रमस्त्वयाऽपनेतव्य इत्यर्थः-आसन देकर श्रम दूर कर (उचित

सम्मान करो) श्रद्धया देयम्-श्रद्धा से दान करो, श्रिया-अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार, ह्रिया लज्जया—नम्रता से (विशेषतया अपने से छोटों को दान देते समय) भिया--(राजादिभयेन; शास्त्रभीत्या वा कार्पण्यापवादभयेन वा) भय से, (राजा अथवा शास्त्र के, कृपणता या निन्दा के नहीं), संविदा—मैत्र्यादिकार्येण—मित्रों और संबन्धियों की सहायता के रूप में, आपद्गतम् न जहाति ददाति काले सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः। (नी० श०) अथवा अपने विवेक से, अथ यदि ते...तथा तत्र वर्तेथाः—तात्पर्य यह है कि यदि सत् और असत् के सम्बन्ध में तुम्हारे मन में सन्देह उत्पन्न हो तो उन बातों में धर्मवृद्धों का अनुकरण करो, विचिकित्सा—संशयः—सन्देह, वृत्तविचिकित्सा—आचरणलक्षणे संशयः--आचरण के सम्बन्ध में सन्देह, संमर्शिनः विचारक्षमाः—बुद्धिमान्, विचारशील, युक्ताः—अभियुक्ताः कर्मणिवृत्ते वा-विद्वान्, युक्त-युक्त उस व्यक्ति को कहते हैं जो परब्रह्म से तादात्म्यलाभ कर चुका हो आयुक्ताः–अपरप्रयुक्ताः–स्वतन्त्र विचार वाले, अलूक्षाः—(अरूक्षाः का वैदिक रूप) अक्रूरमतयः—अच्छे स्वभाव वाले, धर्मकामाः—धर्म में रत, वेदोपनिषत्-वेदरहस्यम् वेदतत्व का रहस्य। यहाँ उपनिषत् (स्त्री) का प्रयोग वेदों के रहस्य के अर्थ में किया गया है। अनुशासनम्—आत्मसंयम का उपदेश, एवमु चैतदुपास्यम्—(उ = और) यहाँ शब्दों की पुनरावृत्ति इसलिए की गई है कि स्नातकों के मन में इन शिक्षाओं का महत्त्व भली भाँति बैठ जाय। उपनिषदों में अंतिम पंक्ति की पुनरावृत्ति करके सारे पाठ का सारांश कह दिया जाता है।

———

जगतः कारणं ब्रह्म

वेदान्त दर्शन के प्रवर्तक परमप्रसिद्ध जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य का जन्म कहा जाता है, ७८८ ई० में हुआ था; तथा ८२० ई० में उन्होंने अपनी ऐहिक लीला समाप्त की थी। भारतीय परम्परा के कुछ विद्वानों के मतानुसार तो वे ईसा से पहले ही हुए माने जाते हैं। भारतीय विचार परम्परा में उनके दर्शन सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रस्थानत्रयी (ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषद्) पर उनके प्रसिद्ध भाष्य हैं यह अवतरण उनके ब्रह्मसूत्र पर लिखे हुए भाष्य से लिखा गया है। इसमें उन्होंने पूर्वपक्ष के समस्त तर्कों का खण्डन करते हुये प्रतिपादन किया है कि ब्रह्म ही इस जगत् का एकमात्र समर्थ कारण है।

पृ० ४२—यहाँ पूर्वपक्षी के इस संभावित कथन को कि ब्रह्म जगत् का कारण नहीं है सामने रखकर स्वामी शंकराचार्य उसके गौरव लाघव पर विचार करते हुए कहते हैं।

१—तन्नोपपद्यते—यह मत (कि चेतन ब्रह्म जो कि एक और अद्वितीय है, जगत् का कारण है) निःसार है उपसंहारदर्शनात्—कुम्हार के द्वारा घट के निर्माण में प्रयोग में लाए जाने वाले मृत्तिका, दण्ड, चक्र आदि के साधनों को देखकर ज्ञात होता है। आगे के दो वाक्यों में इसी अर्थ को विशद रूप से प्रकट किया है। कुलालादयः—कुम्हार (कुलाल) और अन्य। आदि से तन्तुवाय (जुलाहे) का अभिप्राय है। ३—मृदण्ड...संहारेण—उस वस्तु के निर्माण में समर्थ वस्तुओं या साधनों, जो कि उस वस्तु के निर्माण में सहायक होने के कारण उसके कारक कहलाते हैं, का संग्रह करके (जैसे मिट्टी, डंडा, चक्र, डोरा आदि)

४—सगृहीतसाधनाः सन्तः—आवश्यक साधनों का संग्रह करके
५—ह्ायम्—अन्य किसी वस्तु को सहायक के रूप में लिये बिना,
६-तवाभिप्रेतम्—जैसा कि आप मानते अथवा स्वीकार करते हैं।
पूर्व पक्ष का व्यक्ति कहता है कि आपके मतानुसार ब्रह्म एक और अद्वितीय होने के कारण असहाय है। साधनान्तरानुपसंग्रहे सति—अन्य साधनों का उपयोग न करने के कारण, कथंसृष्ट्त्वमुपपद्यते—उसके लिए यह कैसे संभव है कि वह जगत का निर्माण करे। संक्षेप में पूर्वपक्षी का कथन इस प्रकार है:—इस बात को सभी जानते हैं कि कुछ साधनों की सहायता से ही किसी साध्य को प्राप्त किया जा सकता है। कुम्हार घट का निर्माण तभी कर सकता है जब कि उसके पास आवश्यक और उपयुक्त साधन हों। लेकिन, चूँकि ब्रह्म एक और अद्वितीय है और उसके पास उस प्रकार के साधन नहीं हैं अतः वह जगत का निर्माता कैसे स्वीकृत किया जा सकता है? श्री शंकराचार्य जी पूर्वपक्षी के इस तर्क का उत्तर देते हैं—नैष दोषः यह तर्क युक्ति युक्त नहीं है। शंकराचार्यः...यतः उपपद्यते—वह ब्रह्म जगत का निर्माण करने में समर्थ हो सकता है क्योंकि उसमें कुछ विशेष प्रकार के स्वाभाविक गुण हैं जैसे कि दूध में होते हैं। आगे के वाक्य में इसी अर्थ को और स्पष्ट कर दिया है। यथा हि लोके—आदि २ संसार में जिस प्रकार दूध या जल बिना किसी बाहरी साधन की सहायता के ही स्वयं दही या बर्फ के रूप में परिणत हो जाता है उसी प्रकार यहाँ ब्रह्म के विषय में भी समझना चाहिये। ननु आदि से आरम्भ करके पूर्वपक्षी फिर उत्तर देता है। दूध आदि को ही दही आदि के रूप में परिवर्तित होने के लिये गर्मी आदि बाहरी साधनों की आवश्यकता पड़ती है। फिर आप ऐसा क्यों कहते हैं कि "दूध आदि की तरह"

नैष दोषः—शंकराचार्य फिर उत्तर देते हैं—हमारे 'यथा हि लोके' आदि पूर्व कथन की सत्यता इस तर्क से अखण्डित रहती है स्वयमपि...अनुभवति—दूध एक निश्चित मात्रा में परिवर्तन या विकार को स्वयं प्राप्त करता है। एवं त्वार्यते दधिभवाय-उष्णता के द्वारा उसके अन्दर स्वयं चलने वाली दही के रूप में परिवर्तन होने की क्रिया में शीघ्रता आ जाती है। यदि च न स्यात्—यदि दूध में दही के रूप में परिवर्तित होने की क्षमता न होती, नैवोष्ण्यादिना...आपद्यते—गर्मी आदि उसे बलपूर्वक दही नहीं बना सकते। अगले वाक्य में इसका उदाहरण दिया है। साधन...संपद्यते—दूध में पहले से ही उपस्थित रहने वाला दही गर्मी आदि साधनों की सामर्थ्य के द्वारा पूर्णता को प्राप्त हो जाता है। परिपूर्ण...संपादयितव्या-ब्रह्म स्वयं पूर्ण शक्ति वाला है। अन्य किसी वस्तु से उसमें पूर्णता नहीं उत्पन्न की जा सकती है। विचित्रशक्तियोगात्—अपनी विलक्षण शक्ति का प्रयोग करके, विचित्र...उपपद्यते—यह सिद्ध है कि इस जगत के रूप में एक परिवर्तन सर्वथा नवीन हो जाता है।

———

गृहिणः प्रियहिताय दारगुणाः

दशकुमार चरित के इस उद्धरण में महाकवि दण्डी अत्यन्त रोचक ढंग से एक आदर्श गृहिणी के गुणों और धर्मों का वर्णन करते हैं। आकर्षक और अकृत्रिम सौन्दर्य, सुस्वादु भोजन बनाने की कला में निपुणता, सुन्दर गृह-प्रबन्ध, भृत्य-वर्ग पर नियन्त्रण और सबसे अधिक पति की आवश्यकताओं और उसके

सुखदु:ख का ध्यान एक आदर्श गृहिणी के कुछ आवश्यक गुण हैं। अन्त में आजकल भी आदर की दृष्टि से देखे जाने वाले भारतीय पत्नी के उस गुण का दण्डी वर्णन करते हैं जिसके अनुसार उसके प्रेम-पूर्ण हृदय में प्रियतम के दोषों के लिए कोई स्थान नहीं रहता।

पृ० ४३—द्रविडेषु—द्रविड देश में गोदावरी के दक्षिण पूर्वी समुद्र तट तक फैला हुआ दक्षिणापथ का भू-भाग द्रविड देश कहलाता था। काञ्ची इसी की राजधानी थी जिसका वर्तमान नाम काञ्जीवरम् है। २ अनेककोटिसारः—करोड़ों की संख्या में धन रखने वाला अर्थात् अपरिमित धन का स्वामी। शब्द के अन्त में 'देशीय' प्रत्यय का प्रयोग 'कुछ कम' अथवा 'लगभग' के अर्थ में किया जाता है। अदाराणाम्—बिना पत्नी वाले 'दार' शब्द नित्य पुल्लिङ्ग और बहुवचन है। अननुगुण—अनुकूल गुणों से हीन, अयोग्य; पर. दारेषु—दूसरों के द्वारा पसन्द की गई बधू में, याहच्छिकीं...समीक्ष्य—ईप्सित गुणों के होने की संभावना न देखकर, कार्तान्तिको नाम भूत्वा-ज्योतिषी का वेष धारण करके ८ वस्त्रान्ते प्रस्थः—वस्त्र के किनारे में एक प्रस्थ धान बाँधकर। प्रस्थ एक तौल है (मान विशेष) जो लगभग चार सेर के बराबर होता है।

लक्षणज्ञोऽयमिति—उसे शरीर के सामुद्रिक शास्त्रोक्त लक्षणों का ज्ञाता समझ कर अर्थात् भविष्य वक्ता समझ कर। लक्षणवतीम्—शुभ लक्षणों से सम्पन्न। सवर्णाम्—समान जाति वाली। गुणवत्—सुन्दर, सुस्वादु, अभ्यवहारयितुम्—खिलाने में। हसितावधूतः—(मूर्खता के लिए) हंसा और तिरस्कार किया जाकर।

अवसितमहद्धिम्—अवसिता नष्टामहती ऋद्धिः भूतिः यस्या-ताम् सह पितृभ्याम् माता पिता के साथ जिसका धन भी नष्ट हो गया है।

अवशीर्णभवनसाराम्—जिसके घर का मूल्यवान् सामान नष्ट हो गया था, विरलभूषणाम्—थोड़े आभूषणों वाली, संसक्तचक्षु :-उस पर दृष्टि जमाकर, अतर्कयत्—विचार किया, विकट-भद्दे आकार वाली, मृजावन्तः—मृजा शुद्धिः तद्वन्त —स्वच्छता से युक्त, सफाई वाले, सुघर और स्वच्छ वर्ण वाले, रक्ततलांगुली-(करों का विशेपण) लाल हथेलियों और उँगलियों वाले, यव-लाञ्छितौ—यव, मत्स्य, कमल, कलश आदि लक्षणों से युक्त ये शुभ चिन्ह धन, संतान, सौभाग्य आदि के होने की संभावना बताते हैं। समगुल्फसन्धी—('अंध्री का विशेपण') सम और सुडौल टखने और जोड़ों वाले पैर, माँसलौ—माँस से भरे हुए, अशिरालौ—शिरारहितौ जिनमें नसें ऊपर नहीं उठी हुई हैं जो कि कुरूपता का एक चिह्न है। तनुतर—पतले, ईषन्निम्न-कुछ झुकी हुई, धन...तले —"बाहुलतले का विशेषण" धन, धान्य और सन्तति की सम्भावना बताने वाले चिह्नों से युक्त हथेलियाँ, स्निग्धा...मणी—स्निग्धाः उदग्राः कोमलाश्च नख-मणयो ययोस्ते-जिनकी नख रूपी मणियाँ चिकनी (चमकदार) कोमल और सुस्पष्ट हैं। ऋजु—सीधे, अनुपूर्ववृत्त—क्रमशः गोल होने वाली, ताम्र—लाल संनतांसदेशे—सुडौल कन्धों वाले सौकुमार्यवत्यौ—कोमल, निमग्नपर्वसन्धी—जिनमें जोड़ नहीं दिखाई देते हैं, कम्बुवृत्तवन्धुरा-कम्बुवत् शंखवत् वृत्ता वन्धुराच—शंख के समान गोल और सुन्दर, वन्धुरम् तून्नतानतम्—इत्यमरः वृत...अधरम्, गोल ओष्ठ जिनमें बीच के स्थान पर ऊपर नीचे के ओष्ठों का राग अलग २ दिखाई पड़ता है, वाला

पद (मुखकमल) यह और आगे आने वाले पद 'आननकमलम्' (मुखकमल या कमल के समान मुख) के विशेषण हैं।

पृष्ठ ४४ असंक्लिष्टचारुचिबुकम्—जिसकी ठोड़ी सुन्दर और स्पष्ट दिखाई देने वाली है, आपूर्णकठिन गण्डमण्डलम्—जिसमें कनपटी के आसपास का स्थान पूर्णतया विकसित और दृढ़ है, असंगत—न मिले हुए, अनुवक्र—सुन्दर गोलाई से युक्त, स्निग्ध—चिकनी, अनतिप्रौढ़—अधिक बड़ी नहीं, छोटी; असित-...ईक्षणम्—जिसमें नेत्र चमकीले (भासुर) श्वेत, श्याम और अरुण रंगों वाले तीनों भागों से युक्त मन्द अथवा अलस (मन्थर) दीर्घ (आयत) और सुन्दर तथा चञ्चल गति वाले हैं (मधुराधीर-संचार)। इन्दुशकलम्—अर्धचन्द्रः—चन्द्रमा का आधा बिम्ब, इन्द्रनील पंक्तिः—जिसमें घुँघराले बाल इन्द्रनीलमणि की शिला के आकार के हैं। द्विगुण...पाशयुगलम्—द्वौ गुणौ यस्य तद्-द्विगुणं कुण्डलितं च यन्म्लानं नालीकनालं तद्वत् ललितौ लम्बौ च यौ प्रशस्तौ कर्णौ कर्णपासौ तयोर्युगलं यत्र-जिसमें सुन्दर दोनों कान (कर्णपाश) मुर्झाये हुए और दुहरा मोड़े हुए कमल नाल के समान हैं। 'पाश' का प्रयोग सौन्दर्य को प्रकट करने के लिये किया गया है; यह आशय है कि कान मानों देखने वालों को अपने सौंदर्य जाल में फँसाने के लिए फन्दे हैं जो कि (पाश) कमल-नाल को मोड़कर बनाया गया है। अनतिभंगुर—बहुत अधिक टेढ़े नहीं, बहुल—घने, पर्यन्तेऽपि अकपिलरुचिम्—किनारों पर भी काले (भूरे रंग के नहीं) आयामावान्-आयामो दैर्घ्यं तद्वान्-लम्बे एकैकनिसर्गम्-स्वभाव से ही प्रत्येक एक ही ढंग का (आशय यह है कि बाल बीच से फटे हुए नहीं थे), गन्धग्राही-सुगन्धयुक्त, सम... शीलम्-ऐसा सौन्दर्य अच्छे शील से अयुक्त नहीं है अर्थात् इसका चरित्र भी इसके शरीर के बाह्य सौंदर्य और चारुता के समान है;

न तादृशाः आकृति विशेषांगुणविरोधिनो भवन्ति । शा० चतुर्थ; न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम् । मृच्छ ६।१६, आसज्जति. सक्तं भवति—आसक्त है । उद्वहेयम्—विवाह करूँगा, अनुशय—पश्चात्ताप, अविमृश्यकारिणां...अनुशय परम्परा - निश्चय ही, बिना विचार के काम करनेवाले (अविमृश्यकारिणां) मनुष्यों के पास पश्चात्ताप के अवसरों की अनेक परम्परायें आती हैं, अर्थात् उन्हें अनेक बार अपने किये पर पछताना पड़ता है, स्निग्धदृष्टिः—स्नेहपूर्ण दृष्टि से, सम्पन्नम् – गुणवत् ।

साकूतम्—साभिप्रायम्—विशेष अभिप्राय से, अलिन्ददेशे— द्वार के पास चबूतरे पर, सुसिक्त संमृष्टे—जोकि अच्छी तरह लिपा पुता था, दत्तपादशौचम्—पैर धोने का जल देकर, उपावेशयत्—बैठाया, गन्धशालीन् गन्धविशिष्टान् शालीन्—सुगन्ध वाले धान, संक्षुद्य-सावधानतापूर्वक मूसल से धान कूट कर, मात्रयाविशोष्यातपे-आवश्यकतानुसार (मात्रया अल्प परिणामेन धूप में सुखाकर, परिवर्त्य—ऊपर नीचे करके, स्थिरसम—दृढ़ और बराबर, नालीपृष्ठेन—मूसल की तरह के डण्डे के पिछले भाग से, तुषैः...चकार—धान के दानों को तोड़े बिना ही उनसे भूसी (तुष) अलग कर लिए । 'तुष' में तृतीया इस सूत्र के कारण हैः -पृथग्विनानानभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् । तुषैरर्थिनः- (उन्हें) धान की भूसी की आवश्यकता है । 'अर्थिनः' के योग में ईप्सित वस्तु में तृतीया होती है, अतः 'तुष' में तृतीया विभक्ति लगी है । मृजा—शुद्धिः—स्वच्छता, सफाई । भूषणमृजाक्रियाक्षमैः—(तुषैः का विशेषण) गहने साफ करने योग्य, काकिणी—कपर्दिका—कौड़ी जिनका सिक्के की तरह प्रयोग होता था । स्थिरतराणि—सारवन्ति, मितं पचाम् (मित नखे च इजि खश्) एक निश्चित नाप की, स्थाली—पकाने का बर्तन,

पतीली आदि, शराव—मिट्टी का बर्तन—कूँड़ा, अनतिनिम्नोत्तान-विस्तीर्णकुक्षौ—(उलूखले का विशेषण) न अधिक गहरे (निम्न) न अधिक छिछले (उत्तान) और न अधिक फैले (विस्तीर्ण) मुख वाले। ककुभोलूखले—अर्जुन वृक्ष की लकड़ी के बने ऊखल में—काष्ठोलूखले इति भावः। लोहपत्रवेष्टितेन मुखेन (मुसलेन) लोहे का पत्र चढ़े हुए मूसल से, सम सरीरेण—समान आकार वाले, विभाव्यमानमध्यतानवेन—जिसके मध्यभाग का पतलापन स्पष्ट दिखाई देता है। तनोर्भावस्तानवम्,-व्यायतेन-दीर्घेण गुरुणा-भारी।

पृष्ठ ४५ चतुरः...भुजम्—ऐसे ढंग से जिसमें चतुरता और सुन्दरता पूर्वक मूसल को ऊपर नीचे लाने ले जाने में भुजा थक जाती है। उत्क्षेपणमूर्ध्वीकरणम्, अवक्षेपणमधःपातनम्. असकृत वारम्वारं उद्धृत्योधृत्य—बार बार ऊपर नीचे करके अवहत्य—कूट कर, शूर्पकिंशारुकान्—ऐसे धान के दाने जो कि सूप से फबक फटक कर मिट्टी कंकड़ों (कण) और तिनकों (किंशारुक) से अलग कर दिए गये हैं। कथितं पंचगुणे—कथितं च तत्पंचगुणं च-पकाये हुए और पकाये जाकर फूल कर परिमाण में पंचगुना हो जाने वाले। दत्तचुल्लीपूजा—(धान के कुछ दानों से) चुल्हे की पूजा करके। प्रश्लथः...तण्डुलेषु—धान के गलने पर और उनका कुछ-कुछ भात बनने पर, मुकुलावस्था आदि—धान के दानों के पहली कड़ी अवस्था को छोड़कर फूल कर भात बनने पर, संक्षिप्त अनलम्—अग्नि को मन्द कर दिया, उपहितमुखपिधानया—उपहितं स्थापितं मुखं पिधानम् यस्याः—(पतीली से) जिसका मुख ढका हुआ था, अन्नमंड—माँड़, दर्व्या च अवघट्टय—करछुल से ऊपर नीचे करके, समपक्वेषु सिक्थेषु—सब दानों के समान रूप से पक जाने पर,

अन्तःसाराणि-उपर्येवदग्धानि—जिनके भीतर अभी सार भाग है, जला नहीं है अर्थात् अधजली लकड़ी को, समभ्युक्ष्य—बुझाकर, कृष्णाङ्गारीकृत्य -(उन अधजली लकड़ियों के) कोयले बनाकर, तदर्थिभ्यः—उनकी आवश्यकता वालों को, आमलक—आँवला, चिंचा—इमली, यथालाभम्—जितना मिल सके, उपदंशान् शाकादीन्—उपसेचन (साथ खाने के लिए) शाक आदि, उपपाद्य - बनाकर, आर्द्रवालुका०—गीली बालू पर रखे हुए नये कूँड़े में रखकर, तालवृन्त—ताड़ की पत्तियों का बना पंखा, सलवणसंभारम् - नमक मिलाकर। दत्ताङ्गार...धूपवासम्—जलते अङ्गार पर से उठने वाली सुगन्ध से सुवासित करके अर्थात् छौंक लगाकर। श्लक्ष्ण पिष्टम—महीन पिसा हुआ उत्पलगन्धिकमलों की सुगन्ध वाला बनाकर, अचोदयत्-प्रेरयामास—कहा, कुट्टिमे-पक्का बना हुआ फर्श, फलकम्-लकड़ी का पाटा या पीढ़ा, त्रिभागशेषलूनस्य-त्रिषु भागेषु यः शेषो अग्रिमः तत्र लूनस्य छिन्नस्य इत्यर्थः—जिसके अगले सिरे से एक तिहाई हिस्सा कटा हुआ था। अङ्गण...पलाशस्योपरि-अङ्गणे या कदली रम्भा तस्याः पलाश पत्रं तस्य उपरि-आंगन में लगे हुए केले के पत्ते के ऊपर। अभिमृशत्-स्पर्श करते हुए (गीलेपन से) ठंडा करते हुये। पेया-पीने योग्य चावल का मांड़, समुपाहरत्-लाई, अध्वक्लमः—मार्ग की थकावट, प्रहृष्टः—थकावट दूर करके प्रसन्न होता हुआ, प्रक्लिन्न-स्वेद गीले शरीरवाला, दर्वी-चम्मच, करछुल; सर्पिर्मात्राम्-अल्प घृतम् थोड़ा सा घी, सूपम् वरान्नम्-दाल, त्रिजातक-सोंठ, मिर्च, पीपल, कालशेयम्-कलशिर्घटस्तत्र भवं कालशेयं तक्रम्-एक कलशे में बिना जल मिलाए हुआ मट्ठा, कञ्जिका-कांजी, अन्धस्-खाद्यान्न, नव भृङ्गारसंभृतम् (वारि का विशेषण)

मिट्टी के नए पात्र में भरा हुआ (कदाचित् सुराही में), अगुरुधूप-वासितम्—अगुरु की धूप से सुवासित किया हुआ।

पृष्ठ ४६—पाटल—एक प्रकार का पुष्प-विशेष गुलाब, से सुगन्धित किया हुआ। उत्फुल्लो०—पूरे खिले कमलों की सुगन्ध से युक्त, नाली बभूव...नली से धार बाँधकर उसकी तरफ जल गिराया। मुखोपहित-मुख तक ले जाये गये। हिमशिशिर... पक्ष्मा-हिमशिशिर कणैः करालितानि अरुणायमानानि च अक्षि-पक्ष्माणि यस्य जल के वर्फ की तरह ठण्डे कणों से जिसकी आँखों की बरौनियाँ लाल हो गई हैं, कर्कश—कड़े, परिमल-प्रवालोत्पीड-गहरी निकलने वाली सुगन्ध, प्रवाल—पत्ते माधुर्य-मधुर्यस्य प्रकर्षेण अखर्जितम् तर्पितं रसनेन्द्रियं यस्य-माधुर्य की अधिकता से उसकी रसना अत्यन्त सन्तुष्ट हो गई। अकण्ठं पिपौ—खूब पिया (कण्ठतक), संज्ञां—संकेत, इशारा। अपोह्य—हटाकर, हरित-ताजा गोबर से लिपे हुए, उत्तरीय कर्पटम्—ऊपर का वस्त्र, दुपट्टा। विधिवदुपयम्य-विधि पूर्वक विवाह करके, एतदनपेक्षः—इससे उदासीन होते हुए। ऐसा व्यवहार उसने उसके पत्नी जनोचित गुणों की परीक्षा करने के लिए ही किया था, वह वास्तव में वाराङ्गनाओं से आसक्त नहीं था। अवरोधम् करोत्—अपने अन्तःपुर में प्रविष्ट कराया। तामपि—'अपि' का भाव यह है—एक मानवती नायिका की दृष्टि से तो उसे अपने पति के इस कार्य से रुष्ट होना चाहिये था और उस वेश्या से ईर्ष्या करनी चाहिए थी, किन्तु एक पतिव्रता स्त्री की तरह उसने अपने पति के सुख पर अपने सुख का बलिदान कर देना अपना कर्तव्य समझा और उस वेश्या से भी अच्छा व्यवहार किया। मुक्ततन्द्रा—त्यक्तालस्या-परिश्रम से, अहीनम्—त्रुटियों से रहित, निर्दोष, दाक्षिण्यनिधिः-दक्षिणस्य

भावं दाक्षिण्यं तस्य निधिः—दक्षा रूपी धन यथा भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने शा० ४था। सर्व...कृत्वां– सारे घर का भार इस पर छोड़कर। त्रिवर्ग निर्विवेश-धर्म, अर्थ और काम आदि त्रिवर्ग को प्राप्त किया। गृहिण...गुणाः-पत्नी के गुण पति का सुख कल्याण करने वाले होने चाहिए।

वर्षा-वर्णनम्

संस्कृत साहित्य में बहुधा प्रकृति का मानवीकरण किया जाता है। प्रकृति के विविध, सुन्दर रूप-व्यापारों में प्रेम और स्नेह आदि मानवी भावों का आरोप किया जाता है। श्लेष-गर्भ उपमाओं का प्रयोग करके प्रकृति में पौराणिक उपमाओं का आरोप भी किया जाता है। सुबन्धु के वर्षागम के इस वर्णन में संस्कृत साहित्य के प्रकृति वर्णन की ये विशेपतायें अच्छी तरह हैं। इसमें कदाचित् ही कोई ऐसा वाक्य अथवा पद हो जिसमें प्रकृति के व्यापारों से मानव भावों अथवा पौराणिक आख्यानों का संकेत न किया गया गया हो।

पृ० ४६—मुख्य वाक्य इस प्रकार है—एकदा तु वर्षा समयः समाजगाम। सभी विशेषण-पद वर्षा समय के विशेषण हैं। पद श्लिष्ट हैं अर्थात् प्रत्येक पद के दो अर्थ हैं। एक अर्थ उपमेय-वर्षा समय के पक्ष में है। दूसरा अर्थ उपमान-जैसे काकली गायन आदि २ के पक्ष में लगते हैं। काकली... गानदः जिसमें (वर्षा समय) में नदियाँ (निम्नगा) और नद जल से भरे हैं, मन्द और मधुर स्वर वाले संगीत की तरह

(काकलीगायन) वह संगीत जिसमें ऊँचे और मन्द स्वर वाला गान उत्पन्न होता है, 'काकली तु कले सूक्ष्मे ध्वानौ तु मधुराऽस्फुटे' इत्यमरः। सायन्तन समयः—सायंकाल का समय। नर्तित नीलकण्ठः--जिसमें मोर (नीलकण्ठ) नाचते हैं; जब कि शिव (नीलकण्ठ) नृत्य करते हैं। कुमार स्वामिकार्तिक अथवा षडानन शिव जी के पुत्र, समारूढ़ः शरजन्मा (१) समारूढं अभिवृद्धं शराणां तृणविशेषाणां जन्म उत्पत्तिः यत्र--जिसमें शर (सरकण्डे) नामक घास खूब उगती है (२) समारूढ़ः शरजन्मा षडाननः यं स—जिस पर स्वामिकार्तिक चढ़े हुए हैं। 'शरजन्मा षडाननः' इत्यमरः प्रशमित रजः प्रसरः—(१) जिसमें धूल का उड़ना बन्द हो जाता है, (२) जिसमें रजोगुण का प्रसार रुक जाता है। धृतजलदकरकः--जिसमें बादल और ओले हैं, जलं ददातीति जलदः जलाहारकः इत्यर्थः, तादृशः करकः कमण्डलुः धृतः येन सः—जो कि कमण्डलु (करक) लिए है जो कि जल देता है (जलद), प्रलयकाल—सारे जगत के नाश होने के समय, प्रलय का समय। दर्शितानेकतरणिविभ्रमः--जिसमें अनेक नौकाओं (तरणि) का गमनागमन रूप व्यापार (विभ्रम) दिखाई देता है, जिसमें अनेक सूर्यों का (तरणि) भ्रमण दिखाई देता है। निरुपद्रवकानन-प्रदेश इव--(हिंसक जीवों के) भय और बाधाओं से मुक्त जंगल की तरह, घनोत्सेकितसारंग...(१) घनेन मेघेन उत्सेकिताः मत्ताः कृताः चातकाः यत्र सः—जिसमें मेघ दर्शन से चातक (सारंग) प्रसन्नता से उन्मत्त हो जाते हैं। (२) घनं यथा तथा उत्सेकितः सारंगः हरिणः यत्र सः—जहाँ मृग अत्यन्त प्रसन्न हैं। रेवती-बलरामस्य पत्नी धृति करः-(१) हलीनं कर्षकाणां धृतिं सौख्यं करोतीति—कृषकों को (हली) आनन्द (धृति) देने वाला (२) हली बलरामः धृतिकाः धारणकर्ता यस्य जिसके धारण करने वाले

बलराम हैं (हली) समेघनादः—मेघों की गर्जना से युक्त; रावण के पुत्र मेघनाद के साथ, घनश्यामः-(१) घनैः मेघैः श्यामः, (२) घनवत श्यामः पीनपयोधरः—घने बादलों (पयोधर) वाला भारी जो उरोजों (पयोधरों) वाली, समाजगाम--आया।

अगले वाक्य का मुख्य अंश इस प्रकार है—इन्द्रधनुर्लता रराज विभिन्ननीलोत्पलकानननीले-(१) विभिन्नानि मेघा इव नीलोत्पलकाननानि तेः नीले (नभसि)-भिन्न २ प्रकार के मेघ रूपी नीले कमलों के कारण काले दिखाई देने वाले ('नभसि' के पक्ष में) (२) विभन्नाः विशीर्णाः मेघाः तद्वत् नीलानि श्यामवर्णानि उत्पल काननानि लवलय षण्डाः तैः नीले मेघों के समान नीले रंग के कमलों से काले दिखाई देने वाले--('क्रीडसरिस' के पक्ष में) जलदकाललक्ष्मीमातंगकन्यानर्तनरज्जुरिव—जलदकाल लक्ष्मीः वर्षाकाल शोभैव मातंग कन्या चाण्डालकुमारी तस्याः नर्तनरज्जुः-वर्षाकाल की शोभा (लक्ष्मी) रूपी चाण्डाल कन्या के नाचने की रस्सी के समान। आशय यह है कि इन्द्रधनुष मानों वर्षा ऋतु की शोभा (लक्ष्मी) रूपी चाण्डाल कन्या नटी के हाथ की उस चमकदार रस्सी के समान है जिसे पकड़ कर वह नृत्य करती है। जलद काल लक्ष्मी की उपमा चाण्डाल कन्या से इस लिए दी गई है कि दोनों का रंग श्याम होता है और नाचने की काम भी कल्पना एक चाण्डाल कन्या के रूप में की है। नभःसौध-तोरणमालिकेव-आकाश रूपी महत्त्व (नभः सौध) द्वार (तोरण पर लगी हुई) रत्नों की माला के समान, प्रवसता...नखपदावलि-रिव यहाँ ग्रीष्म (निदाघ) और आकाश (द्यौ), जो क्रमशः पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिंग है, की नायक और नायिका से उपमा दी गई है। परदेश जाने वाले निदाघ ने अपनी प्रियतमा द्यौ, के वक्ष-स्थल पर इन्द्रधनुष के रूप में नख-क्षत के चिह्न अपनी मधुर

स्मृति को बनाये रखने के लिए डाल दिए हैं, जैसा कि कहा—चिरोत्पन्न प्रवासेन प्रीतिर्गच्छेत् पराभवन्। रागायतन संस्मारि यदि न स्यान्नखक्षतम्॥ बन्धुर—सुन्दर, नभोमन्दार–सुन्दर कलिकेव-आकाशरूपी मन्दार वृक्ष की एक सुन्दर कली के समान। कुसुमकेतोः (कामदेवस्य) विलासयष्टिरिव—कामदेव के हाथ की उस छड़ी के समान जिसे वे शौकिया अपने हाथ में रखते हैं।

अति तृष्णा वेगपीतजलनिधिजलशङ्खमालां—अति-तृष्णायाः वेगेन पीता जलनिधिजलेन सह या शंखमाला ताम्—बड़ी जोर की प्यास के कारण (बादलों के द्वारा) पीये हुए समुद्र के जल के साथ पीये हुए शंखों की पंक्ति के समान। बला-काच्छलात् (बरसात में इधर-उधर उड़ने वाले) बगुलों के बहाने से, पीतहरितैः...समं घनकालः–यहाँ ऐसी कल्पना की गई है कि मानों वर्षा ऋतु (घनकाल) और बिजली (विद्युत्) गोटों से शतरञ्ज खेल रहे हों। कृष्णकेदारिकाकोष्ठिकासु -कृष्णः शस्य समृद्धया श्यामलाः या केदारिकाः अल्पानि क्षेत्राणिताः एव कोष्ठिकाः अक्षफलकस्थ-कोष्ठाः—हरी भरी क्यारियों रूपी (शतरञ्ज खेलने के पट्टे पर बने हुए) खानों में। पृ० ७ समुत्पद्भिः...नयद्यूतैः–फुदकते हुए मेढकों रूपी लाख की बनी शतरञ्ज की गोटों से। नयो युद्ध नीतिः तत् शिक्षकैः द्यूतैः चतुरगैः हस्त्यश्वादिभिरित्यर्थः। जातुषैः जतुनो विकारैः जतुनिर्मितैरित्यर्थः। रविदीपकज्जलितमेघनिकषोपले–सूर्य रूपी दीपक के काजल से काले पड़नेवाले मेघ रूपी कसौटी के पत्थर में। समयस्वर्णकारकषित स्वर्णरेखेव–वर्षा ऋतुरूपी सुनार के द्वारा खींची हुई रेखा के समान, करपत्रम्—क्रकचः–आरा (लकड़ी काटने का)। दाँतदार किनारों वाली पंक्तियाँ होने के कारण केतकी (केवड़े की पत्तियों की उपमा आरे से दी गई है। दारुणि—काष्ठे जलददारुणि लोलतडिल्लताकरपत्रदारिते—

कज्वल विजली रूपी आरी से कटे हुए बादल रूपी काष्ठ में। निर्धूत—उड़ाए हुए, चूर्णनिकराः—लकड़ी काटने से निकला हुआ चूर्ण, विच्छिन्न-त्रुटितं—टूटा हुआ, खरपवनवेगभ्रमितघन-घरट्टघट्टनसंचूर्णिततारानिकरा इव—खरपवनस्य चण्डवातस्य वेगेन भ्रमितः यः घनः एव घरट्टः पाषाणमयः सक्तुपेषणाख्यो यन्त्र विशेषः तस्य घट्टनं चूर्णनाय यन्त्रभ्रमणं तेन संचूर्णिताः तारानिकराः इव—तेज चलने वाली हवा से चलने वाले मेघरूपी चक्की के पत्थर की रगड़ से पिसे हुए तारों के समूह के समान 'खर पवन' आदि में दी हुई उपमा से ज्ञात होता है कि सुबन्धु के समय हवा से चलने वाली चक्कियाँ चला करती थीं। विजगीषोः—विजय की इच्छा वाला। प्रस्थानलाजाञ्जलय इव—त्रिभुवन विजय के लिए जाते हुए कामदेव पर फेंकी हुई धान की खीलों की आञ्जलि के समान। अवाकिरन् बाललता प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः। रघुवंश २।१० करकाः—ओले। शाद्वलम् शादाः बालतृणानि अस्मिन् सन्ताति शाद्वल नवतृण श्यामलं स्थलम्—हरी घास के मैदान। सेन्द्रगोपम्—इन्द्रगोपैः रक्तवर्णैः कीटविशेषैः सहितम्—बीर-बधूटी नामक लाल कीड़ों से युक्त। शुकाङ्गस्य श्यामलम्—तोते के शरीर की तरह हरा। लाक्षारसाङ्कितम्—लाल रंग के अलते से चिन्हित। स्तनोत्तरीयम्—चोली।

मृत्युशय्यास्थितस्य पितुः पार्श्वे हर्षः

इस उद्धरण का कथा प्रसंग इस प्रकार है :—सन् ६०५ ई० में प्रभाकर वर्धन के राज्य के उत्तरी भाग पर हूणों ने आक्रमण किया। कदाचित् वृद्धावस्था के कारण राजा स्वयं हूणों का सामना करने में असमर्थ थे अतः उन्होंने अपने बड़े पुत्र राज्यवर्धन को एक बड़ी सेना के साथ इस कार्य के लिए भेजा। हर्ष भी उनके साथ गए, किन्तु छोटे होने के कारण हिमालय पर्वत पर शिकार खेलने में लग गए। वहाँ उन्होंने अपने पिता की बढ़ी हुई अस्वस्थता का समाचार सुना और तत्काल अपने पिता को देखने के लिए दौड़ पड़े। किन्तु वहाँ आकर उन्होंने अपने पिता को मृत्युशय्या पर पड़ा पाया जो कि राज्यवर्धन के आने से पहले ही मृत्यु को प्राप्त कर गए।

मृत्युशय्या स्थित राजा के भवन और हर्ष की अस्तव्यस्त मनोदशा का बाण ने अत्यन्त सुन्दर वर्णन यहाँ किया है। मृत्यु के समय राजा द्वारा हर्ष को दिया हुआ उपदेश, जिसमें उन्होंने शोक न करने और प्रजा का हित करने के लिए कहा था, बड़े ही मार्मिक हैं। पिता की मृत्यु एक युवक के जीवन में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है जो कि उसके गुण और योग्यता की अग्नि-परीक्षा करती है। हर्ष ने अपने पिता की अन्तिम इच्छा का किस प्रकार पालन किया यह उनके जीवन चरित्र से स्पष्ट है।

पृष्ठ ४८—वासतेयी-रात्रि, वसति + ढञ् (एम्) 'पथ्य' तिथि 'वसति स्वपतेर्ढञ्' सूत्र से 'पथिन्' 'अतिथि' और वसति शब्दों से 'ढञ्' प्रत्यय 'साधु' अर्थ में (अच्छे, सुखदायक के अर्थ में)

हो जाता है। 'अ्' के कारण वसति के प्रथम स्वर की वृद्धि हो जाती है, (तद्धितेष्वचामादेः) और अन्तिम 'इ' का लोप हो जाता है। वसति के लिए जो साधु या सुखदायक, या अच्छी है। तुरीये यामे—चतुर्थ प्रहरे, चौथे पहर में तुरीय चतुरीय का संक्षिप्त रूप है। रात्रि के चौथे पहर में देखे गए स्वप्न प्रायः सत्य हुआ करते हैं। चटुल...ककुभा—चटुलानां चञ्चलानां ज्वालानामग्निशिखानां पुंजेन कलापेन पिंजरीकृताः श्वेतरक्तीकृताः सकलाः ककुभो दिशो येन तेन-अपनी चञ्चल लपटों से दिशाओं को भूरे रङ्ग की कर देने वाले, दुर्निवारेण-कठिनता से रोके जाने योग्य, दवहुतभुजा—दावानलेन-वन की अग्नि से, तस्मिन्नेव आदि—इस स्वप्न से हर्ष के माता-पिता की मृत्यु का संकेत मिलता है। उत्प्लुत्य—(उत् + प्लु + ल्यप्)—उछलकर, स्नेहमयः बन्धनपाशाः-स्नेह के पाश, बन्धनानि किल सन्ति बहूनि स्नेहकृतवन्धनमन्यत्। दारुभेद-निपुणोऽपि षडङ्घ्रिनिष्क्रियो भवति पङ्कज कोशे॥ तिर्यञ्चः पशवः पक्षिणश्च—'स तिर्यङ् यः तिरोऽञ्चति', इत्यमरः। दक्षिणेतरम् दक्षिणाद् इतरं वाममित्यर्थः—बाईं, वामाक्षिस्पन्दनमशुभसूचकम् परस्पन्दे—फड़की, वेपथुः (वेप् + अथुच्) प्रकम्पः विपप्रथे--फैल गया, निर्निमत्तम्—अकारणम्, अन्तर्वन्धनस्थानात्—आन्तरिक बन्धन का स्थान, आरोहति...अह्न—दिन के मध्य तक सूर्य के चढ़ जाने पर अर्थात् दोपहर होने पर, हरितहयः—हरिताः हयाः यस्य स सूर्यः। उभयतो...तालवृन्तः—जिसके दोनों ओर धीरे २ पंखे झले जा रहे थे। संवाह्यमानं संचाल्यमानं तनुलध्वाकारं तालवृन्तं व्यजनं यस्य सः। क्षितितलवितताम् = पृथ्वी पर फैली हुई, अति...वपुषम्—अति शिशिरस्य अत्यन्तं शीतलस्य मलयज-रसस्य चन्दनरसस्य लवेन लेशेन लुलितं विलिप्तं वपुः पृष्ठ भागो

यस्याः ताम्—जिसके शरीर पर अत्यन्त ठंढे चन्दन का लेप है, इन्दुधवलोपधाम्—धारिणीम्—चन्द्रमा की तरह धवल तकिया लगाये हुए, वेत्रपट्टिकाम्—वेत की चटाई, अधिपूर्वक शीङ् का कर्म होने के कारण कर्म कारक है। साशङ्कः-शङ्कित।

लेख...मालकम्—यह 'दीर्घाध्वगम्' का विशेषण है, लेखःराजज्वरः विषयकं पत्रं गर्भे यस्याः तया, नीली रागेण मेचका श्यामवर्णा रुक् कान्तिर्यस्यास्तया, रचिता मुण्डमाला मालाकारं शिरोवेष्टनं यया—जिसने अपने सर को नीले रङ्ग के कपड़े (साफे) के फेंट, जिसके भीतर (गर्भ में, राजा की अस्वस्थता सूचक) पत्र था, से बाँध रखा था। भाव यह है कि उस दूत ने पत्र अपने साफे की फेंट में रख रक्खा था। श्रमा...कालिमानम्—श्रम और धूप के कारण जिसका शरीर काला पड़ गया था। अन्त...नीयमानम्—जो कि अन्तस्ताप के कारण जल कर कोयला हो गया हो। अति . व्याजेन—अतित्वरया अतिवेगेन गमने द्रुततराभ्यां प्रजवाभ्यां पदाभ्यां उद्धूयमाना उत्क्षिप्यमाणा या धूलेः रजसः राजिः पंक्तिः तद्व्याजेन अपदेशेन—अत्यन्त शीघ्र चलने में पहले की अपेक्षा और अधिक तेज उठने वाले पैरों से उठाई गई धूल के समूह के बहाने से। मेदिनी—पृथ्वी, अनिमित्तभूतदीर्घाध्वगम्—लम्बे मार्ग पर चलने वाले और अशुभ सूचक दूत को।

पूर्व...भीतिः—पहले देखे हुये बुरे शकुनों को परम्परा के कारण उत्पन्न हो गया है भय जिसमें। अभिद्यत हृदयेन—हृदय विदीर्ण हो गया। प्रथम...लेखम्—उसने पहले अपने चेहरे पर दिखाई देने वाले दुःख को (मानो) पहिले दिया और पत्र बाद में, अर्थात् पत्र खोलने से पहिले ही हर्ष ने उसके मुख पर दिखाई देने वाले विषाद के भाव को जान लिया।

(लेखपठनात्पूर्वमेव विषाद कारणंजज्ञौ इत्यर्थः ।)

पृष्ठ ४६—लेखार्थे...संतापम्—लेखपठनसमकालेव तद्हृदयं सन्तापपूर्णमभवदित्यर्थः । किं मान्द्यं तातस्य—मेरे पिता की क्या बीमारी है ? खंजाक्षरः--अस्पष्टक्षरैः--अस्पष्ट शब्दों में । क्षरद्भिः—बहते हुए । दाहज्वरः--अत्यन्त ताप देने वाला ज्वर । पफाल—विदोर्णा बभूव- विदीर्ण हो गया । जनयितुः आयुष्यकामः–पिता की दीर्घायु की इच्छा वाला । जातम्—समूह, आत्मपरिबर्हम्-स्वभोगोपकरणानि भोजनपात्रादीनि–अपना व्यक्तिगत राजकीय सामान । ब्राह्मसादकरोत्–ब्राह्मणों को दे दिया । कृ, भू, अस्, और सपद् के योग में जब किसी शब्द से 'सात्' लगा दिया जाता है तब उसका अर्थ 'देने' के भाव में हो जाता है। दापय...पर्याणम्—घोड़ों पर साज कसवाओ । ससंभ्रमम्... नीतम्– घबराहट में भागते हुए सईस के द्वारा लाये हुए (परिवर्धक अश्वपालः)। अकाण्ड...क्षुभितं—अकाण्डे अनवसरे प्रयाणस्य संज्ञा सूचकः शखस्तेन क्षुभितं सञ्चालितं—गमन-सूचक शङ्ख की अकस्मात् ध्वनि से चौकन्ने होने वाले । उद्भूत... विवरम्—जिसने टापों की तेज आवाज (ख) से सारी दुनिया के विवर को भर दिया था। अश्वीयम्—(अश्वसमूहः) अश्व + छ (ईय्)–'केशाश्वाभ्यां यच्छावन्यतरस्याम्' सूत्र से समूह अर्थ में केश और अश्व शब्दों से क्रमशः यत् (य) और छ (ईय) प्रत्यय हों। अतः केश्यम् और अश्वीयम् बन जाते हैं विकल्प से क्रमशः ठक् (इक्) अण् (अ) भी हो जाते हैं और कौशिकं और आश्वम् रूप बन जाते हैं। अढौकत्--तेजी से गए ।

विगत जयशब्दम्—जय २ की ध्वनि से रहित अस्त...नादम्—जहाँ तूर्य आदि बाजों की ध्वनि बन्द है। उपसंहृतगीतम्—जहाँ सङ्गीत बन्द कर दिया गया है ।

उत्सारितोत्सवम्—जहाँ सभी प्रकार के उत्सव रोक दिये गए हैं। स्कन्धावरम्—राजधानीम्-समाससाद-(सम्+आ+सद्+लिट्) प्राप-पहुँचा। प्रति···प्रवेशम्-जहाँ प्रवेश करना मना कर दिया गया है। पिहितपक्षद्वारके-पिहितानि घटितानि पक्षद्वाराणि पक्षकाणि यस्य तस्मिन्-जिसके बगल के द्वार बन्द थे। यह और आगे के अन्य पद 'धवलगृह' के विशेषण हैं। धवलगृह-सफेद महल। पिहित अपिहित (अपि+धा+क्त) 'अपि' का 'अ' विकल्प से लुप्त हो जाता है। परिहृतकवाटरटिते—परिहृतं अपहृतं कवाटानां रटितं द्वारफलकानां शब्दो यस्मिन्-जहाँ दरवाजों के बन्द करने का शब्द नहीं किया जाता है। घटित···मरुति—घाटतैः पिहितैः गवाक्षै वातायनैः रक्षितो मरुत् वायुः यस्मिन्—जहाँ खिड़कियाँ वन्द करके हवा का आना वन्द कर दिया जाता है। निभृत...कमणि—निभृताभिः निःशब्दाभिः संज्ञाभिः निर्दिश्यमानानि प्रदर्श्यमानानि सकलकर्माणि यस्मिन्-जहाँ सभी बातों के लिए शब्द रहित संकेत किया जा रहा है। प्रणयिन्-प्रिय, प्यारा। गम्भीर—भिषजि-जहाँ दाह ज्वर के बढ़ने से चिकित्सक चिन्तित थे। दुर्मनायमानमन्त्रिणि—जहाँ मन्त्रिगण उदासीन थे। भेषज...व्यवहारिणि-भेषजस्य औषधस्य सामग्रयाः संपादने सज्जीकरणे व्यग्राः व्यासक्ता समग्राः सकला व्यवहारिणः वणिजः यस्मिन्—जहाँ सभी औषधि विक्रेता दवा का सामान इकट्ठा करने में व्यग्र थे। मुहुः...: तृषि—जहाँ बार बार पानी पिलाने वाले को पुकारने से बीमार राजा की भयानक प्यास का अनुमान किया जा सकता है। आमलक—आँवला, मातुलुङ्ग चकोतरा, जीवितेशस्य—यमस्य विरलं वाचि—अत्यन्त कम बोलते हुए। चलितम्—विक्षुब्ध।

पृष्ठ ५० - विह्वल-व्याकुल सततं श्वसिते-लगातार ऊँची साँसें

लेते हुए। अनवरत...नयनया-अनवरतं सततं रोदनं आक्रन्दनं तेन उच्छूने स्फीते नयने यस्याः तया—लगातार रोने के कारण जिसकी आँखें सूज आई थीं। वीजयन्त्या—हवा करती हुई। निर्भरस्नेहावर्जितः—नितान्त प्रेम्णा आकृष्टः—नितान्त प्रेम के कारण खिंचे हुए।

शरीरार्धेन...उद्गात्—आधे शरीर से उठ बैठा, उद्गात् (उद् + इ + लिट्) ससंभ्रमम्—घबराहट में, उन्नमय्य-उत्थाप्य—उठाकर, मज्जन—डूबना, पीडयन्—दबाते हुए, अवघट्टयन्-संघर्षयन्—रगड़ते हुए, निमीलयन विलोचने-आँखें बन्द करते हुए, पक्ष्माग्र...विस्राविणी (विलोचन का विशेषण) पक्ष्माणां नेत्रलोम्नामग्रे ग्रथितमेकीभूतं अजस्रं सन्ततं अस्रं अश्रुजलं तत् विस्रावयतः—लगातार आँसू बहाते हुए जो कि आँखों की पलकों में उलझे हुए थे, संज्वरः—तेज बुखार, प्रणत-जननीकं-प्रणतजननी + कप् (क) प्रणता नमस्कृता जननी येन—जिसने अपनी माता को नमस्कार कर लिया है। पिबन्निव... चक्षुषा—निर्निमेष दृष्टि से पीते हुए से, टकटकी बाँधकर देखते हुए, वेपथुमता-सकम्पेन—काँपने वाले, क्षयक्षामकण्ठः—क्षयेण शक्ति ह्रासेन क्षामः क्षीणः स्वरो यस्य सः—शक्ति नष्ट होने से जिसका गला बैठ जा रहा हो। कृच्छ्रादिव—मानो बड़े कष्ट से, तृतीय...अद्य—आज इन्हें भोजन किए तीसरा दिन है।

वाष्प...क्षरम्-वाष्पवेगेन प्रजवाश्रुपातेन गृह्यमाणानि अस्पष्टानि अक्षराणि वर्णा यथा स्यात् तथा—अश्रु प्रवाह के कारण रुक २ कर निकलने वाले शब्दों से, आयतं (दीर्घा) निःश्वस्य - एक लम्बी सांस लेकर, ईदृशेषु...सर्वप्रमाथी-अपने सम्बन्धी जनों का विशेष कर तुम्हारे जैसे सम्बन्धी जन का प्रेम इतना अतिदुर्धर (जो बिल्कुल नहीं रोका जा सके)

और सर्वप्रमाथी और सबको विक्षुब्ध करने वाला होता है कि वह बुद्धिमानों के चित्त को दुखी कर देता है। विधुरां अशरणं करोति विधुरयति पीडयति—विधुर से नाम धातु, विधुर सर्वं प्रमथते इति सर्व प्रमाथी सर्वपीडकः। शुचे, दातुम्—शोकाय दातुं दुःख परवशं कर्तुम्- अपने को दुखी करने के लिए।

पृष्ठ ५१—आयुष्मदाधिना--आयुष्मतः तव आधिना मनस्तापेन–तुम्हारे मानसिक शोक से, निशितम्—तीक्ष्ण तक्ष्णोति-काटता है, तनिमा पतलापन, अकलुषस्य-अमलिनस्य, धर्मस्थ-निष्पाप धार्मिक, भिषग्...औषधम्—यह वैद्यों का अनुरोध ही है जो मुझे दवा पिला रहा है (मैं जीवित रहने की इच्छा से औषध नहीं ले रहा हूँ।) 'गतिबुद्धि' आदि सूत्र के कारण पहले का कर्ता कर्म हो जाता है। सर्व...पितरौ—आप जैसे व्यक्तियों के लिए, जो कि प्रजा के पुण्य के फल स्वरूप उत्पन्न होते हैं। माता पिता के केवल जन्म लेने के साधन हैं। उत्पत्स्य—मानानाम् (उत्पत्तिकामानाम्) उद्+पत् से भविष्यत् अर्थ में शानच् प्रत्यय लगाकर बना है, प्रजाभिः ज्ञातिभिः—राजाओं के भाई बन्धु तो उनकी प्रजा ही हैं उनके अपने सम्बन्धी नहीं। उपयोद्यो—खाओगे। पथ्यम्—कल्याणकारी भोजन (पथ्य)। धक्ष्यन्निव—मानो जलाते हुए। संदुधुक्षे—प्रदीप्तो बभूव—जल उठे। अकांडे—असमय में, व्यभ्र इव वज्रपातः—मेघ रहित आकाश से बिजली गिरने के समान। विगतानि अभ्राणि यस्मात् स व्यभ्र मेघरहितः।

—

शूद्रकसभायां शुकः

कादम्बरी का यह अवतरण बाण की भव्य शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें लम्बे २ समासों, श्लिष्ट पदों और कवि-कल्पना का बाहुल्य है। प्रातःकाल एक चाण्डाल कन्या राजा शूद्रक की सभा में आती है और एक तोता राजा को भेंट करती है। इस छोटी सी नीरस बात के वर्णन में कितनी प्रतिभा और कल्पना का प्रयोग किया गया है और उसमें कितने अधिक काव्य और कला का चमत्कार है। इन सब बातों के कारण यह वर्णन पाठकों के हृदय में अपने लेखक के प्रति अत्यन्त आदर की भावना उत्पन्न कर देता है। बाण की प्रभावशाली चरित्र चित्रण की शक्ति का परिचय भी इसी अवतरण से भली भाँति मिलता है। प्रातःकाल का लाल सूर्य जो कि नवीन कमलों के दल को खोल देता है; सुन्दर और भयानक प्रतीहारी, अद्वितीय भव्यता और शोभा से युक्त महाराज शूद्रक, कौतूहल जननी चाण्डाल कन्या, जो कि परम सुन्दरी और प्रभावशालिनी है। और दक्षिण चरण को उठाकर राजा का अभिनन्दन करने वाले अद्भुत तोता वैशम्पायन, आदि २ चित्र कवि की लेखनी द्वारा अत्यन्त भव्य रूप में अङ्कित किए गए हैं। कला के सच्चे पारखी को इन चित्रों में भव्य वर्णन शैली, सर्वथा नवीन और महान कल्पनाओं की परम्परा, और काल्पनिक अथवा वास्तविक तथ्यों में से महान और भव्य रूपों को ढूँढ ढूँढ कर रखने की लेखक की प्रवृत्ति से तत्काल निरतिशय आनन्द और सन्तोष प्राप्त होगा।

पृष्ट ५१—मुख्य वाक्य इस प्रकार है—एकदा तु राजानाम्... समुपसृत्य प्रतीहारी...सविनयमब्रवीत नांति...मालिनि—जब

कि हज़ारों किरणों वाले भगवान् सूर्य, जिन्होंने कमल की नई कलियों के संपुट खोल दिये हैं और जो आकाश में अधिक ऊँचे नहीं उठे हैं अर्थात् शूर्योदय के थोड़ी देर बाद ही। नलिनदल संपुटाः तान् भिनत्ति इति० भिद् तस्मिन् किंचिदुन्मुक्तः पाटलिमा (पाटल + इमन्) येन् राजानम् + समुपसृत्य का कर्म है। आस्थान ..गतम्--बैठने के मण्डप में विराजमान।

पृष्ठ ५२—भीषणस्मरणीयाकृतिः—आदि ये सभी पद प्रतीहारी (द्वार रक्षक स्त्री) के विशेषण हैं, अङ्गना...कृतिः—बाईं ओर लटकती तलवार के कारण जिसका धारण करना स्त्री जनोचित नहीं है, उसका सुन्दर और भयानक शरीर सर्पों से लिपटी हुई चन्दन लता के समान दिखाई देता था। कुक्षौ भवः कौक्षेयकः। संनिहितः विषधरः यस्याः, भीषणा रमणीया च आकृतिः यस्या। अविरल...मन्दाकिनी—स्नान के बाद जल से ऊपर निकलते हुए ऐरावत हाथी के कुम्भ जिसके जल में दिखाई पड़ रहे हैं, ऐसी आकाश गङ्गा के समान जिसके शरीर के गाढ़े चन्दन से लिप्त स्तनद्वय ऐरावत हाथी के कुम्भद्वय के समान प्रतीत होते थे। अविरलं धनं यत् चन्दनस्यानुलेपनं तेन धवलितं स्तनतटं कुच प्रान्तो यस्याः सा उन्मज्जतः स्नानं कुर्वतः ऐरावतश्य कुम्भमण्डल यस्याः। चूड़ामणि...छलेन—मस्तक पर लगी हुई मणि में पड़ने वाले प्रतिबिम्ब के छल से। भाव यह है कि सामन्त राजकुमारों के मुकुट मणि में प्रतिहारी का प्रतिबिम्ब झलक रहा था। इस व्यापार की कवि उत्प्रेक्षा करता है, सामन्त राजकुमारों ने महाराज शूद्रक की आज्ञा के समान उसे अपने शिर पर धारण कर रखा था। कलहंस धवलाम्बरा —(१) कलहंस वत् धवल अम्बरं वस्त्रं यस्याः – हंस की तरह का श्वेत वस्त्र धारण किए हुए। (२) कलहंसैः धवलं अम्बरं

आकाशं यस्याम्—श्वेत हंसों से श्वेत आकाश वाली (शरद के समान), धारा—किनारा, वशीकृत...मण्डला—(१) जिसने सभी एकत्र राजाओं को वश में कर रक्खा है (प्रतीहारी के पक्ष में) (२) जिसने राजाओं को अपने अधीन कर लिया है। (परशुधारा के पक्ष में), वेत्रलतावती--(१) वेत की छड़ी हाथ में लिये हुये (प्रतीहारी) (२) जहाँ वेत के वृक्ष अधिकता से होते हैं (विन्ध्य० के पक्ष में), राज्याधि...विग्रहिणी-मानो शरीर धारिणी राजलक्ष्मी हो (विग्रहिणी--शरीरिणी), क्षिति...कमला-जिसने कमल के से अपने हाथ पैर पृथ्वी पर रख रक्खे हैं अर्थात् जो प्रणत हैं। सुरलोक...राजलक्ष्मी—जो स्वर्ग में चढ़ने वाले त्रिशंकु राजा की उस राजलक्ष्मी के समान है जो कि क्रुद्ध इन्द्र की हुँकार से नीचे गिरा दी गई है। दक्षिणापथ-दक्षिण भारत, सकल...देवः—समुद्र के समान केवल आप ही पृथ्वी पर पाये जाने वाले समस्त रत्नों के उचित आस्पद हैं। आश्चर्यभूतः--एक अद्भुत वस्तु, इति कृत्वा--यह सोचते हुए, देवः प्रमाणम्--महाराज ही इस विषय में कुछ कहने अथवा विचारने के अधिकारी हैं। यह वाक्य प्रायः भृत्यों के द्वारा राजाओं के प्रति प्रयुक्त होता है। प्रतीहारी केवल अपने स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करती है। (यदेवाथ राज्ञोनुशासनम् तदेव मया विधेयम्)।

प्रावेशयत्—ले जाया गया। अब कवि यह वर्णन करता है कि राजा का व्यक्तित्व कैसा था और चाण्डाल कन्या पर उसका क्या प्रभाव पड़ा। मुख्य वाक्य इस प्रकार है प्रविश्य च सा...राजानम् अद्राक्षीम् नरपति आदि—यह और आगामी पद 'राजानम्' के विशेषण हैं, अशनि...मतम्—अशनेः वज्रात् भयं तेन पुञ्जिताः एकत्रीभूताः कुलशैलाः तेषां मध्यं गतम्—वज्र के भय से एकत्र होने वाले कुलशैलों के बीच बैठे हुए नरपति

सहस्र की तुलना कुलशैलों से और राजा की कनक शिखरिन से की गई है। अमेक...अवयवम् (राजानम्) अनेकानि विविधानि यानि रत्नाभरणयानि मणिखचितभूषणानि तेषां यानि किरण-जालकानि मरीचिमण्डलानि तैरन्तरिता अवयवा यस्य स तत्—रत्न जटित गहनों से निकलने वाली किरणों के समूह से जिसका सारा शरीर आच्छादित है। इन्द्रायुध...भागम् (जल दिवसम्) इन्द्रायुधानां हरिकामुकाणां यत्सहस्रं तेन संछादिता तिरोहिता अष्टदिग्भागाः ककुभां प्रदेशाः यस्मिन् तथाभूतम्—(मेघाच्छन्न दिन की तरह) जिसमें दिशाओं के आठों भाग इन्द्र के हजारों धनुषों से ढके हुए हैं। अव...कलापस्य अवलम्बिताः स्थूल-मुक्तानां कलापाः गुच्छाः वा यस्मिन्—जिसमें मोतियों के बड़े २ गुच्छे लटक रहे थे। यह और आगे के अन्य षष्ठ्यन्त पद दुकूल वितानस्य (रेशमी वितान) के विशेषण हैं। कनक... चतुष्टयस्य-कनक श्रृङ्खलाभिः नियमितं मणिदण्डिकाचतुष्टयं यस्य—जिसके रत्न जटित डण्डे सोने की जञ्जीर से बँधे हैं। गगन...पाण्डुरस्य—आकाश गङ्गा के फेन के समूह के समान उज्ज्वल। इन्दुः...निषण्णम् – चन्द्रकान्त मणि की चौकी पर वैठे हुये।

पृष्ठ ५३—उद्धू य...कलापम्-उद्धूयमानः वीज्यमानः कनक-दण्डचामराणां कलापः समूहः यस्मिन्—सोने के डण्डों वाली चमरों के समूह जिस पर डुलाये जा रहे हैं। उन्मयूख... प्रणते—उद्गता मयूखाः किरणाः यस्य तत् उन्मयूखं मुखं तस्य कान्तयः तासां विजयः तेन पराभव तेन प्रणते पादसंलग्ने (शशिनि)—ऊपर की तरफ निकलने वाली किरणों वाले मुख की कान्ति के विजय से होने वाली पराजय के कारण मानो चरणों पर गिरे हुए (चन्द्रमा के समान) स्फटिकपादपीठे—स्फटिक की

बनी चौकी पर। इस और आगे के पदों में राजा के नखशिख का वर्णन है। प्रणत आदि—नीलम के फर्श के संपर्क से काले पढ़ने वाले नखों के संबन्ध में उत्प्रेक्षा की गई है कि वे मानों चरणों में गिरने वाले शत्रुओं की दीर्घ निश्वासों से काले हो गये हैं। आसनो...विराजमानम्—आसन में जड़े हुए पद्मराग रत्नों की प्रभा से लाल रङ्ग की दोनों जंघाओं से शोभित वह विष्णु के सदृश था, जिनकी दोनों जंघायें तत्काल मारे हुए मधु और कैटभ के रक्त से लाल हैं। आसनात् उल्लसिता ऊर्ध्वं स्फुरिता ये पद्मरागास्तेषां आसनगतलोहित मणीनां किरणाः तैः पटलीकृतेन रक्तीकृतेन। गोरोचना...पर्यन्ते (दुकूले का विशे०) गोरोचनया लिखितानि हंसमिथुनानि तैः सनाथः युक्तःपर्यन्तः प्रान्तभागः ययोः—जिनके किनारों पर पीली गोरोचना से हंसमिथुनों के चित्र बने हुए थे। चारु...दशे—चारुः चामरस्य पवनः तेन प्रनर्तिता आन्दोलिता दशा ययोः तौ—चामर की मन्द पवन से नाचने की दशा को प्राप्त होने वाले। अतिसुरभि...स्थलम्—अतिसुरभि चन्दनानुलेपेन धवलितं उरःस्थलं यस्य—जिसका वक्षस्थल अत्यन्त सुगन्धित चन्दन के लेप से धवल है। उपरि . स्थासकम्—उपरि विन्यस्ता कुंकुमस्य स्थासकाः—जिसके ऊपर केशर का स्थासक लगा है। केशर को घोल कर उससे बनाई जाने वाली चित्रावली को कुंकुमस्थासक कहते हैं। चर्चा तु चार्चिक्यं स्थासकः-इत्यमरः (२।६।१२२) अन्तरा...च्छेदम् (कैलास का विशे०) अन्तरा अन्तरा मध्ये निपतिता पर्यस्ता बालातपस्य छेदाः खण्डाः यस्मिन्—जिस पर स्थान स्थान पर प्रातःकालीन सूर्य का धूप पड़ रहा है। अपरः...परिवेषम्—उसके मुख के चारों ओर मोतियों की माला ऐसी प्रतीत होती थी मानों नक्षत्रों के समूह भ्रमवश मुख को दूसरा चन्द्रमा समझ कर उसे घेरे हुए हों।

वहाँ मुख की उपमा चन्द्रमा और मोतियों की नक्षत्रों से दी गई है। यह उत्प्रेक्षा की गई है मानों मोती की माला के रूप में नक्षत्रों ने मुख चन्द्र को घेर रक्खा है। परिवेषः—सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर दिखाई देने वाला प्रभा मण्डल–'परिवेषस्तु परिधिरूपसूर्यकमण्डले' इत्यमरः (१।२।३३) अति...वाहुशिखरम् —अत्यन्त चपल राजलक्ष्मी को बाँधने की हथकड़ियों के से प्रतीत होने वाले नीलम के दो भुजबन्धों से जिसकी भुजा का ऊपरी भाग वेष्टित है। अतिचपला राजलक्ष्मीः तस्याः बन्धनस्य बन्धार्थं निगडः तस्य कटकः वलयं तस्य शंकाम्। ईषदालम्बितकर्णोत्पलम्—जिसके कान में लगा हुआ कमल कुछ २ नीचे लटक रहा था। उन्नतघोणम्—उन्नता घोणा नासिका यस्य—ऊँची नाक वाला। उत्फुल्लपुण्डरीकलोचनम्—फूले कमल के समान जिसके नेत्र हैं। अमलः...पट्टायतम्—(ललाटदेशम् का विशे०)—अमलं निर्मलं यत् कलधौतं सुवर्णं तस्य यः पट्टः तद्वत् आयतं विस्तीर्णम्—जो सोने की निर्मल पट्टी की तरह चौड़ा था। अष्टमीचन्द्रशकलाकारम्—अष्टमी को दिखाई देने वाले चन्द्रमा के टुकड़े के आकार वाला। अभिषेकः... पूतम्—सारे जगत् के सम्राट् के रूप में अभिषिक्त होते समय छिड़के जाने वाले जल से पवित्र। ऊर्णासनाथम्—ऊर्णा भ्रुवोः अन्तरा आवर्तः तेन सनाथं सहितम्—भौहों के बीच के स्थान में सुन्दर रोओं की सूक्ष्म रेखा से युक्त। ऊर्णा छोटे २ बालों की उस पतली और घुमावदार रेखा को कहते हैं जो कि दोनों भौहों के बीच के स्थान में होती है। यह ऊन की सी होती है। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार ऊर्णा वाला मनुष्य चक्रवर्ती राजा या अन्य कोई ऊँचे पद वाला व्यक्ति होता है। 'ऊर्णा मेषादि लोम्निस्यात् आवर्तश्चान्तरा भ्रुवोः' इत्यमरः (३।३।५०) आमोदि-

मालतीकुसुमशेखरम्–आमोदीनि सुगन्धीनि यानि मालती कुसुमानि जाती पुष्पाणि तेषां शेखरः चूडाभूषणं यस्य सः तथा तम्—जिसके सिर पर अत्यन्त सुगन्ध वाले मालती पुष्पों का गुच्छा है। शिखर…चलम्–अतः उस अस्ताचल सा प्रतीत होता था जिस पर प्रातःकाल तारों का समूह गिर रहा हो। आभरण…तया–आभरणानां भूषणानांप्रभा कान्तिस्तया पिशंगितं पीतरक्तीकृतं अङ्गं तस्य भावः तया…गहनों की चमक से शरीर पिशङ्ग (पीलालाल–भूरा) होने के कारण। लग्नहर-हुताशम्—शिव (के तीसरे नेत्र की) अग्नि से युक्त। भाव यह है कि राजा कामदेव के समान सुन्दर था। आसन्नवर्तिनीभिः… परिवृतम्--सेवा करने के लिए, मानों आई हुई दिगङ्गनाओं के समान प्रतीत होने वाली समीप खड़ी हुई वारविलासिनियों से घिरे हुए। अमल…बिम्बतया—अमले मणि कुट्टिमे संक्रान्तं सकलदेहस्य प्रतिबिम्बं यस्य तस्य भावः–मणियों से जड़े हुए कुट्टिम (फर्श) में सारे शरीर का प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण। पति…उह्यमानम्--ऐसा प्रतीत होता था मानों वह पृथ्वी (अपनी पत्नी--पृथ्वीपति होने के कारण) के द्वारा प्रेम के कारण हृदय में धारण किया गया हो। नीचे के, हस्त…तलम, वाक्य में विरोधाभास अलङ्कार है जो कि श्लेष पर आश्रित है। अशेष… देहम्—सभी जनों के द्वारा उपभोग की जाने वाली अवस्था को लाई गई हुई होकर भी असाधारण राजलक्ष्मी से उसका शरीर आलिङ्गित था। 'साधारण' और 'राजलक्ष्मी' शब्द श्लिष्ट हैं। उसके धन-धान्य और समृद्धि का सभी लोग आनन्द उठाते थे अर्थात् उसकी राजलक्ष्मी सबके लिए साधारण (सामान्य-समान रूप से सबके उपभोग्य) थी। किन्तु उसके शरीर पर एक असाधारण (विशेष) शोभा (लक्ष्मी) थी। असाधारण का यह अर्थ भी है :—

'असामान्य'। राजलक्ष्मी को साधारण और असाधारण एक साथ बताना विरोध है। लेकिन श्लेष से निकलने वाले उपर्युक्त अर्थ से विरोध की शान्ति हो जाती है। अपरिमित... अद्वितीयम्—अगणित अनुयायियों से घिरे होकर भी वह अकेला (अद्वितीय) था अथवा ऐसा था जिसके समान कोई न हो। अनन्त...सहायम्—हाथी और घोड़ों के असंख्य बल के होते हुये भी एक मात्र तलवार ही उसकी सहाय थी अर्थात् वह संग्राम में केवल तलवार से ही शत्रुओं को जीतता था हाथी, घोड़ों की उसे आवश्यकता नहीं थी।

पृष्ठ ५४—एक देश...मण्डलम्—एक स्थान में रहकर भी वह अपने बल से सर्वत्र व्याप्त था अर्थात् सारी भूमि पर शासन करता था। आसन...निषण्णम्—सिंहासन पर बैठा हुआ होकर भी वह अपने धनुष पर बैठने वाला था (अर्थात् विजय के लिए केवल अपने धनुष पर ही आश्रित रहता था।) उत्सादित...नलम्—शत्रु रूपी ईंधन को जला देने पर भी जिसकी प्रतापाग्नि जल रही थी। आयत...दर्शनम्—उसकी आँखें बड़ी होकर सूक्ष्म (सूक्ष्म दृष्टि वाली) थीं। महादोष... अधिष्ठानम्—बड़े २ दोषों वाला होकर भी वह गुणों का आगार था; महादोष (बड़ी भुजाओं वाला दोः=भुज)। कुपति-वल्लभम्—कुपति (बुरा पति या पृथ्वीपति, कु=पृथ्वी) होते हुए भी वह अपनी पत्नियों का वल्लभ था। अविरत...मदम्—हरदम दान [मद, (नशा) या दान] देते हुये भी (मदवाला होकर भी) अहंकार से रहित था। अति...चरितम्—अत्यन्त शुद्ध स्वभाव वाला होकर बुरे (कृष्ण—काले) चरित्र वाला था अर्थात् कार्यों से भगवान् कृष्ण के समान था। अकर...तलम्—बिना हाथों वाला (कर-हाथ अथवा टैक्स देने वाला) होकर भी सारा भुवन

उसके हाथ में था अर्थात् स्वयं किसी को कर नहीं देता था और सारी पृथ्वी पर उसका शासन था।

प्रचलितरत्नवलयेन ('पाणिना का विशे०) प्रचलितानि रत्नवलयानि यस्य—जिसके रत्न जटित कंकण हिल रहे हों। रक्त...कोमलेन—लाल कमल दल के समान कोमल। जर्जरितमुखभागाम्—जर्जरितो मुखभागो यस्याः—जिसका सिरा जर्जर हो गया है। नरपतिप्रतिबोधनार्थम्—राजा का ध्यान आकृष्ट करने के लिए। असकृत् सभाकुट्टिमं आजघान--अनेक बारं परिषद्‌बद्धभूमिं। ताड़याकास—फर्श पर कई बार बेत की छड़ी पटकी। वेणुलता—बाँस की पतली छड़ी, तद्राजकम्—वह राजाओं का एक समूह, एकपदे—अचानक। बन...शब्देन—जिस प्रकार ताल की ध्वनि से जङ्गली हाथियों का समूह चौंक पड़ता है। 'ताल' शब्द का अर्थ ताड़ का वृक्ष होता है। ताड़ के वृक्ष के गिरने की आवाज से जङ्गली हाथियों का ध्यान अचानक खिंच जाता है। भानुचन्द्र ने 'ताल' का अर्थ 'वाद्य-विशेष' किया है। यह अर्थ हाथी पकड़ने के पूर्व में प्रचलित ढंग की ओर संकेत करता है। ताल का अर्थ यूथपति हाथी के कानों की फड़फड़ाहट से भी लगाया जा सकता है। युग...बदनम्—एक साथ मुँह घुमाकर। आकृष्य (चक्षुः)--दृष्टि हटा ली। तदभिमुखम्—उसकी तरफ मुँह करके।

प्रधान वाक्य इस प्रकार है—अवनिपतिस्तु प्रतीहार्या निर्दिश्यमानां तां...अनिमिषलोचनो ददर्श। दूरादालोक्य—(प्रतीहारी ने चाण्डाल कन्या से कहा) दूर से दिखाओ। दूरात् ..निर्दिश्यमानाम्—'दूर से दिखाओ' ऐसा कह कर राजा के सामने जो प्रतीहारी के द्वारा ले जाई गई। चाण्डाल कन्या होने के कारण वह राजा के अधिक समीप नहीं जा सकती थी।

वयः...शिरसा—वयसः परिणामेन वार्धक्येन पाण्डुरं शिरः यस्य सः तेन—वृद्धावस्था के कारण जिसका सिर सफेद हो गया था। यह और अन्य तृतीयान्त पद 'पुरुषेण' के साथ संबद्ध हैं। रक्तराजीवेक्षणापाङ्गेन—रक्त कमलवत् नेत्रापाङ्गौ लोचन-प्रान्तौ यस्य तेन—जिसकी आँखों के किनारे लाल कमल की तरह लाल थे। अनवरतः...तय—नित्य व्यायाम शारीरिक श्रम करने के कारण। यौवन...संधिना—जिसके शरीर के जोड़ ढीले नहीं हैं, यद्यपि उसका यौवन बीत गया है। सत्यपि...कृतिना—चाण्डाल होकर भी जिसकी आकृति क्रूर नहीं थी। अनुगृहीतार्यवेषेण—अनुगृहीतः स्वीकृतः आर्यस्य वेषो येन तेन—भले आदमियों का सा वेष धारण किये हुए। 'महाकुलकुलीनाऽऽर्य-सभ्य सज्जन साधवः' इत्यमरः (२।७।६) अधिष्ठित पुरोभागाम्—जिसका अग्रभाग घिरा हुआ था, अर्थात् जिसके आगे चल रहा था (पुरुष) 'आकुलाकुल' आदि 'चाण्डाल दारकेण' का विशेषण है। आकुला...धारिणा—चञ्चल काकपक्ष वाला। काकपक्ष-कानों की तरफ, कनपटी पर लटकने वाले बालों के गुच्छे जुल्फें, कौए के पङ्खों की तरह दिखाई देने के कारण काकपक्ष कहलाते हैं। 'बालानां तु शिखा प्रोक्ता काकपक्षः शिखण्डिका' इति हलायुधः। कनक...मुद्वहता—लोहे की सीखों का बना होकर भी अन्दर बन्द तोते की हरी चमक से हरा दिखाई देने के कारण पन्ने का सा बना पिंजरा लिए हुए। असुरः...कुर्वतीम्—असुरों के द्वारा ले लिए गये अमृत को वापिस लेने के लिए छल से चतुर विलासिनी (स्त्री-मोहनी रूप) का रूप धारण करने वाले विष्णु भगवान् के समान जो काली होने के कारण प्रतीत होती थी। पटुः—चतुरः, मनोज्ञः—चतुर, आकर्षक, सुन्दर। यहाँ बाण ने 'अमृतमंथन' कथा की ओर संकेत किया है, जिसमें

वर्णन है कि विष्णु भगवान् ने मोहनी रूप धारण करके दैत्यों से अमृत का कलश ले लिया और उसे देवताओं को दिया। संचारिणी...पुत्रिकाम्—चलती फिरती नीलम की पुतली सी। 'पाञ्चालिका पुत्रिका स्यात् वस्त्रदन्तादिभिः कृता' इत्यमरः (२।१०।२६)। अगुल्फा...शरीराम्-नीचे टखनों तक लटकने वाले नीले वस्त्र से ढके शरीर वाली। 'तद्ग्रन्थी घटिके गुल्फौ' इत्यमरः। उपरिकुण्ठनाम्-(इस नीले वस्त्र के) ऊपर जिसने लाल रेशम का घूँघट लगा रक्खा है।

पृष्ठ ५५—नीलो...तपाम्—सायंकालीन (लाल) धूप पड़ने वाले नीले कमलों के समूह के समान। एककर्ण...मण्डलम्—एककर्णे अवसक्तं लग्नं दन्तपत्रं कर्णाभरण विशेषः तस्य प्रभया धवलितं कपोलमण्डलं यस्याः सा ताम्—एक ही कान में लगे हुए दन्तपत्र की चमक से जिसका कपोल मण्डल श्वेत दिखाई दे रहा था। दन्तपत्र—कर्णाभरण, पत्ती की तरह होता था, शायद पहले यह हाथी दाँत का बनता था, इसलिए इसे दन्तपत्र कहते थे। उद्यदिन्दु...विभावरीम्—उद्यन् इन्दुः तस्य किरणैः छुरितं मुखं यस्या सा ताम्—उदित होते हुए चन्द्रमा की किरणों से लिप्त मुख वाली रात्रि के समान। कृष्णवर्णा चाण्डाल कन्या काली रात्रि के समान है और उसका चमकीला दन्तपत्र चन्द्रमा के समान है। आकपिल...लोचनाम्-आकपिला ईषत् पिशङ्गवर्णा या गोरोचना तया रचितः तिलकः विशेषक एव तृतीयं लोचनं यस्या सा ताम्—कुछ भूरे रङ्ग के गोरोचन से (माथे पर लगे हुये) बनाये हुये, और तीसरे नेत्र के समान प्रतीत होने वाले, तिलक (को धारण करने) वाली। ईशान...भवानीम्—शिव के द्वारा धारण हुए किरातवेष के अनुकरण पर किराती का वेष धारण करने वाली पार्वती के समान।

किरात—एक जङ्गली जाति, नैपाल के पूर्व में हिमालय पहाड़ पर रहने वाले लोग किरात आज भी कहलाते हैं। 'भेदाः किराताः शबराः पुलिन्दाः म्लेच्छजातयः' इत्यमरः। उरः स्थल...श्रियम—उरःस्थल निवासेन संक्रान्ता नारायण देहप्रभा तया श्यामलितां लक्ष्मीमिव—हृदय में निवास करने वाले नारायण के शरीर की निकलती हुई चमक से श्याम शरीर वाली लक्ष्मी की तरह। कुपितः...रतिम् कुपितः हरः शिवः तस्य हुताशनः तृतीय नेत्रोद्भव अग्निः तेन दह्यमान मदनः तस्य धूमेन मलिनीकृतां रतिं इव—क्रुद्ध शिव के तीसरे नेत्र से निकलने वाली अग्नि से जलते हुए कामदेव की धूम से मलिन शरीर वाली रति के समान। उन्मद...यमुनाम्—उन्मदः उत्कटमदः क्षीवः यो हली बलरामः तस्य हलेन आकर्षणं तस्माद् भयं तेन प्रपलायितां यमुनामिव--नशे में चूर बलराम के हल के द्वारा खींचे जाने के भय से भागी हुई यमुना के समान। यमुना का जल काला होने के कारण चाण्डाल कन्या की उपमा यमुना से दी गई है। अतिबहल..पङ्कजाम्—अतिबहलः अतिप्रचुरः पिण्डालक्तकरसः तस्य रागेण पल्लवितं पादपङ्कजं यस्याः—खूब गहरे रङ्ग के अलते से जिसके चरण कमलों के पास पंखड़ियों (पंक्तियों) की रचना की गई है (अर्थात् जिसके कमल के से कोमल चरणों पर अलते से बनी हुई पत्तियों के रूप की सजावट है।) अचिर...कात्यायनीम्—अचिरं तत्काल मृदितः महिषासुरः तस्य रुधिरेण रक्तौ चरणौ यस्याः एवं विधां कात्यायनीं दुर्गां इव—तत्काल मारे हुए महिषासुर के रक्त से लाल चरण वाली दुर्गा के समान। आलोहिता ..मयूखाम्—आलोहिताः ईषद्रक्ता या अङ्गुलिप्रभा तया पाटलिता श्वेतरक्तीकृता नखमयूखाः यस्या ताम्—जिसके नखों की चमक अँगुलियों की कुछ लाल चमक

से पाटल (श्वेतरक्त) रङ्ग की हो रही है। अतिकठिन... संचरन्तीम्—मानों अत्यन्त कड़े मणि जटित फर्श के स्पर्श को न सह कर पृथ्वी पर पत्तों के टुकड़े बिछा २ कर चलती हो। भाव यह है कि उसके नाखूनों की लाल प्रभा पृथ्वी पर जब पड़ती थी तब ऐसा प्रतीत होता था मानो वह कड़ी जमीन पर नए, लाल २, कोमल पत्तों को बिछा कर चलती हो ताकि जमीन की रगड़ से उसके कोमल पैर छिल न जायँ। आपिंज...शरीरतया—नूपुरमणियों की गुलाबी चमक जो कि ऊपर की ओर निकल कर फैल रही थी, से सारा शरीर लिप्त होने के कारण। पावकेनेव...देहाम्—मानों ब्रह्मा के शासन को भी न मान कर, रूप की तरफ ही झुक जाने वाले अग्नि भगवान् के द्वारा जाति शुद्ध करने के लिए जिसकी देह आलिङ्गित हो। ब्रह्मा ने उसे चाण्डाल कन्या बनाकर अस्पृश्य कर दिया था। पर अग्नि भगवान् ने मानों उनकी इस बात को मानकर उसे शुद्ध करने के लिए आलिङ्गित कर लिया। अग्नि में डालने से कोई भी पदार्थ शुद्ध हो जाता है। अनङ्ग...मानेन—(दाम्ना का विशे०) अनङ्गः मदनः एव वारणः गजः तस्य शिरसि भूषणार्थं या नक्षत्रमाला तद्वत् आचरति तेन नक्षत्रमाला स्यात्—सत्ताइस नक्षत्रों की तरह सत्ताइस मोतियों की माला। कामदेव रूपी हाथी के शिर की नक्षत्रमाला सी प्रतीत होने वाली। सैव नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविंशतिमौक्तिकैः इत्यमरः। रोम... वालकेन—('दाम्ना' से संबद्ध) रोमावली रूपी लता की क्यारी के समान। मेखला...स्थलाम्—जिसकी कटि के चारों ओर करधनी (तगड़ी) पड़ी हुई है। जघन—पेट का नाभि से नीचे का भाग। अतिस्थूल...कृतकण्ठप्रदाम—वड़े मोटे २ मोती के दानों से बनाए हुए स्वच्छ हार रूपी गङ्गा की धारा के द्वारा

जिसका यमुना के धोखे से (मानों) आलिंगन कर लिया गया हो। कृष्णवर्ण चाण्डाल कन्या, मानों, यमुना थी और हार गङ्गा की धारा। अब द्व्यर्थक उपमायें हैं। शरद... लोचनाम्—खिले हुए कमल के समान उसके नेत्र थे (विकसित पुण्डरीकवत् लोचने यस्याः) अतः वह शरद् के समान थी, जिसके कि खिले हुए कमल ही लोचन हैं (विकसितानि पुण्डरीकाणि एव लोचनानि यस्याः) अथवा जिसमें विष्णुः अपने नेत्र खोलते हैं (विकसितः पुण्डरीक लोचनः विष्णु यस्याम् (शरदन्त में देवोत्थानी एकादशी पर विष्णु भगवान् जाग पड़ते हैं) घनकेशजालाम्—(१) घनं केश पाशः यस्याः ताम्—घने बालों वाली (२) घनाः मेघाः एव केश जालाः यस्या—बादल ही जिसके बाल हैं। प्रावृट्—वर्षा ऋतु। मलयमेखलाम्—मलय पर्वत के ढाल। चन्दनपल्लवावतंसाम्—(१) चन्दनपल्लवानां अवतंसः शेखरः यस्याः—जिसने सिर सजावट के लिए चन्दन के पत्ते लगा रक्खे हैं। (२) चन्दनपल्लवाः एव अवतंसाः यस्याम्—चन्दन के वृक्षों के पत्ते ही जिसमें अवतंस के समान हैं। नक्षत्रमालाम्—तारों का समूह। चित्र...भूषिताम्—(१) चित्राणि नाना प्रकाराणि श्रवणयोः आभूषणानि तैः भूषितां मण्डिताम्—कानों में भाँति २ के गहने धारण करने वाली। (२) चित्रश्रवणाभरणैः नक्षत्रविशेषैः शोभितां, चित्राश्रवणे एव आभरणे ताभ्यां भूषितां इति वा—चित्रा और श्रवण नाम के नक्षत्र (तारे) रूपी गहने जिसे शोभित कर रहे हैं अथवा चित्रा, श्रवण और भरणी नाम के नक्षत्रों से जो शोभित है। श्लेष में अकार और आकार का भेद नहीं रहता। अतः यहाँ चित्र और चित्रा एक ही शब्द मान लिये गए हैं। हस्तस्थितकमलशोभाम्-(१) हस्तयोः स्थिता कमलस्य शोभा यस्याः ताम्—कमलों

की शोभा जिसके हाथों में स्थित थी अर्थात् जिसके हाथ कमल की तरह कोमल और सुन्दर थे। (२) हस्ते स्थितं यत् कमलं तेन शोभा यस्याः ताम्—जो अपने हाथ के कमल से सुन्दर मालूम पड़ती है (लक्ष्मी)। मनोहारिणीम्- (१) विलोभनीयया आकृत्या चेतोहराम्—सुन्दर रूप के कारण चित्त को हरण करने वाली। (२) चेतोहराम्-चेतना का अपहरणकरनेवाली (मूर्छा) अक्षतरूपसंपन्नाम्- (१) अक्षतेन रूपेण सम्पन्नाम्-अक्षत रूप सम्पत्ति से युक्त- (२) अक्षतरुभिः उपसम्पन्नाम्—अक्ष (बहेड़ा) के वृक्षों से युक्त (अरण्यभूमि) दिव्योपितमिव—देवी की तरह। अकुलीनाम्- (१) नास्ति कुलंयस्या तम् (अनभिजातां चाण्डालकुलोत्पन्नत्वात्- (चाण्डाल होने के कारण) जो अच्छे कुल की नहीं है। (२) कौ पृथिव्यां लीना न भवति इति ताम्-(दिव्यत्वात्—पृथ्वी में न रहने वाली [(अ+कु+लीन) दिव्ययोषित्]। लोचनग्राहिणीम् अत्युद्भुद्रूपवशात् कामिजनस्य नेत्रांकर्षिणीम्—अत्युद्भुत्- रूप होने के कारण नेत्रों को आकृष्ट करने वाली। नेत्रपुटसम्मेलनकारिणीम्—आँखें बन्द कर देने वाली। अरण्क- मलिनीम्—जङ्गली कमलिनी। मातङ्ग कुलदूषिताम्—चाण्डाल (मातङ्ग) कुल में होने से दोषयुक्त। (२) मातङ्ग कुलेन करियूथेन दूषिताम् मर्दिताम्=हाथियों के समूह के द्वारा नष्ट की हुई।

पृष्ठ ५६—अमूर्तामिव स्पर्शवर्जिताम्—अमूर्त—(रूपहीन) पदार्थों की तरह वह भी (उच्च कुछ के मनुष्यों द्वारा) छूये जाने के योग्य नहीं थी। आलेख्य...फलाम—केवल देखने भर के लिए बने चित्र की तरह वह भी केवल देख कर ही उपभोग किये जाने के योग्य थी। मधु···समृद्धिमिव—वसन्त ऋतु की पुष्प समृद्धि के समान। विजातिम्—(१) विगता उत्तमा जातिः यस्याः ताम्—नीच कुल की। (२) विगता जातिः जातिपुष्पाणि

मालतीपुष्पाणि यस्याः ताम्—चमेली के (अथवा मालती के) पुष्पों से रहित। अनङ्गकुसुमचापलेखामिव—कामदेव के पुष्प धनुष के समान। मुष्टिग्राह्यमध्याम्—(१) मुष्टिग्राह्यः अतितनुः मध्यः कटिप्रदेशः यस्याः ताम्—जिसकी कमर इतनी पतली है कि मुट्ठी में पकड़ी जा सकती है। (२) मुष्टिना ग्रहीतुं योग्यः मध्यः यस्याः ताम्—जिसका मध्यभाग मुट्ठी से पकड़े जाने के योग्य है। यक्षाधिपतिलक्ष्मीमिव-कुबेर की लक्ष्मी (धन समृद्धि) के समान। अलकोद्भासिनीम्—(१) अलकैः कुन्तलैः उद्भासेत इत्येवंशीलाम्—घुंघराले बालों से शोभित। (२) अलकायां यक्षाधिपतिपुर्यां उद्भासते इत्येवंशीलाम्—कुबेर की अलका नगरी में शोभित होने वाली। अचिरोपरूढ़यौवनाम अभी जल्दी ही जिस पर यौवन छा गया है। अतिशयरूपाकृतिम्-जिसकी आकृति (शरीर की बाह्य रूपरेखा) और सौन्दर्य बहुत अधिक है। अनिमेषलोचनः-(नरपति का विशे०) टकटकी बाँधकर।

अहो...प्रयत्नः-अहो। ब्रह्मा ने उचितपात्र में ऐसा रूप बनाने का प्रयत्न नहीं किया। यदि नाम इयं आत्म...उत्पादिता—यदि इसको ऐसे रूप की ही ब्रह्मा को बनाना था जोकि (रूप) सभी अन्य रूप वाले पदार्थों का उपहास करता है। किमर्थम्... जन्म-तो इसे ऐसे कुल में जन्म क्यों दिया जिसका स्पर्श नहीं किया जा सकता अर्थात् जिसमें उत्पन्न होने वाले व्यक्ति से स्पर्श का सुख नहीं किया जा सकता। मन्ये...प्रजापतिना—मैं समझता हूँ कि चाण्डाल जाति के व्यक्ति को छू लेने से लगने वाले दोष के भय से ब्रह्मा ने इसे विना छुये हुए ही बनाया है। भाव है—ब्रह्मा ने इसे हाथों से नहीं बनाया प्रत्युत कल्पना से ही बनाया है। (कल्पना यथार्थ से अधिक सुन्दर होती है)। अन्यथा...लावण्यस्य नहीं तो ऐसा अछूत और पूर्ण रूप कैसे

हो सकता है। नहि...कान्ति–क्योंकि शरीर के ऐसे अङ्गों में, जोकि हाथ के स्पर्श से मुरझा जाते हैं, ऐसी कान्ति कहाँ हो सकती है। अर्थात् हाथ के स्पर्श से जो चीज (बनाते समय) मुरझा जाती है, उसमें ऐसी कान्ति आ ही नहीं सकती। सर्वथा...कारिणम्–असमान वस्तुओं (सुन्दर रूप और नीच कुल) का संयोग कराने वाले ब्रह्मा पर धिक्कार है। अति-मनोहरा...सुरता–अत्यन्त सुन्दर रूप की होते हुए भी इसके साथ सुरत (संभोग व्यापार) सदा निन्दनीय है (सततं निन्दतं सुरतं यस्याम्) जैसे असुरों की राजलक्ष्मी हो जो कि सुर समूह से द्वेष करने वाली है (सततं निन्दिता सुर समूहः यया)। उद्वेजयति–खेद और निराशा से उद्विग्न करती है। ईषत...तंसा-ईषत् किंचित् अवगलितः आवर्जितः कर्णपल्लवः कर्णे स्थितः पल्लवावतंसः यस्याः सा–जिसके कान में लगा हुआ पत्तियों का गहना कुछ नीचे लटक आया है। प्रगल्भवनिता–प्रौढ़ा स्त्री। राज्ञे न्यवेदयत्–राजा के सामने उपस्थित किया। विदितसकलशास्त्रार्थः–जोकि व्याकरण, न्याय, मीमांसा आदि सभी शास्त्रों को जानता है। राजनीति प्रयोग कुशलः–राजनीति के व्यवहार में कुशल। पुराण ..निपुणः–इतिहास और पुराण की कथा कहने में चतुर। वेदिता...श्रुतीनाम्–जो संगीत और उसकी श्रुतियों को जानता है। 'श्रुति' संगीत शास्त्र का पारिभाषिक शब्द है। दो स्वरों के बीच में स्थित, स्वरों के अवान्तर भेद जिनसे कोमल, अतिकोमल, तीव्रतर, तीव्रतम इत्यादि रूप बनते हैं। षड्ज, मध्यम और पञ्चम की चार २ ऋषभ और धैवत की तीन २ तथा गन्धार और निषाद की दो दो श्रुतियाँ हैं। इस प्रकार श्रुतियों की पूर्ण संख्या २२ है। समानश्रुतिक स्वर परस्पर वादी संवादी होतें हैं। आख्यायिका–

घटना। आख्यानक--इतिवृत्त। सुभाषित--वाग्वैदग्ध्यपूर्ण वार्ता। अध्येता--अध्ययन करने वाला। स्वयं च कर्ता--और स्वयं रचना करने वाला। परिहासालापपेशल:--विनोद और परिहास की बातचीत करने में चतुर। वेणु--वंशी। मुरज--ढोल अथवा मृदङ्ग। असमः श्रोता--अद्वितीय सुनने और समझने वाला। नृत्य...निपुणः--नृत्य को समझने और करने में चतुर। चित्रकर्मणि--चित्रकला में। द्यूत...प्रगल्भः--जूआ खेलने में चतुर। प्रणयः...चतुरः-प्रणय कलहेन कुपिता या कामिनी की तस्याः प्रसादनस्य सान्त्वनस्य उपाये चतुरः--प्रेम में कुपित हो जाने वाली रमणियों को मनाने में चतुर।

पृष्ठ ५७--गजः...अभिज्ञः--हाथी, घोड़े, स्त्री, पुरुष के शारीरिक लक्षणों का सामुद्रिक शास्त्रोक्त ज्ञान रखने वाला। इतिकृत्वा--ऐसा समझ कर (कि यह तोता पृथ्वी का सर्वश्रेठ रत्न है और महाराज रत्नों के श्रेष्ठ पात्र हैं)। आत्मीयः क्रियताम्--अतः इसे अपना बनाइये।

अपसृते--दूरीभूते--उसके हट जाने पर। उन्नमय्य--उठाकर। अतिस्पष्ट...गिस--ऐसी वाणी से जिसमें वर्ण, स्वर और संस्कार (व्याकरण संबन्धी) स्पष्ट हैं। संस्कारः व्याकरणजन्याशुद्धिः। कृतजयशब्दः--'जय हो' ऐसा शब्द कह कर। आर्या एक प्रकार का छंद।

मुख्य वाक्य इस प्रकार है--भवतो रिपुस्त्रीणां स्तनयुगं-व्रतमिव चरति'--आपके रिपुओं की स्त्रियों के स्तनयुग मानों व्रत कर रहे हों। अन्य पद 'स्तनयुगम्' के विशेषण हैं। अश्रुस्नातम्--आँसुओं से नहाये हुए। समीप...शोकाग्नेः--हृदय में जलने वाली शोक रूपी अग्नि के पास रहने वाले तुम्हारे द्वारा अपने

पति के मारे जाने से) । विमुक्ताहारम्-विगतः मुक्ताहारः यस्मात्—मोतियों के हार से शून्य । विमुक्तं आहारं भोजनं येन-भोजन छोड़ देने वाले । राजा के प्रताप का वर्णन है। राजा के द्वारा मारे हुए शत्रुओं की रानियों के स्तनयुग शोकाग्नि के पास रहते हैं, आँसुओं से गीले रहते हैं और मोतियों के हार से शून्य होकर मानो व्रत करते हों। व्रत वाला व्यक्ति भी स्नान, अग्निसेवन और उपवास करता है।

——

संध्या वर्णनम्

कादम्बरी से लिये गये इस अंश में तपोवन में संध्या समय के दृश्य का वर्णन है। यह संध्या-वर्णन समस्त संस्कृत साहित्य के कुछ अत्यन्त उत्कृष्ट दृश्य-वर्णनों में से एक है। सारा का सारा वर्णन इतना विशद है कि यह पाठक के कल्पना चक्षुओं के सामने संध्या का मूर्तिमान् दृश्य उपस्थित कर देता है। इस अवतरण से इस बात का प्रमाण मिलता है कि बाण में, प्रकृति का अतिसूक्ष्म-निरीक्षण करके उसके वास्तविक रूप का अत्यन्त, स्पष्ट; विशद और विस्तृत रूप से चित्रण करने की महाकवि जनोचित सामर्थ्य बहुत अधिक थी। धीरे २ समस्त भूमण्डल पर छा जाने वाली रात्रि का वर्णन तत्सम्बन्धी अनेक रूप व्यापारों की यथार्थ योजना द्वारा किया गया है। अस्त होते हुये सूर्य, सायंकालीन अरुणिमा का धीरे २ लुप्त होना संध्याकालीन, अरुणक्षितिज छोटे २ और प्रकाशयुक्त तारों का क्रमिक आविर्भाव, रात्रि का आगमन, अन्धकार का प्रसार, चन्द्रमा का उदित होना और फिर चंद्रिका धौत धरा-धाम का

दृश्य आदि २ ऐसे ही अनेक रूप व्यापार हैं। प्रकृति के भिन्न २ उपकरणों में मानव भावों और व्यापारों की ऐसी सजीव प्रतिष्ठा की गई है कि वे हमें हमारे ही जैसे आकार प्रकार के रक्त-मांस निर्मित चेतन प्राणी प्रतीत होते हैं। रात्रि, मानो, (मित्र) सूर्य के नाश से ही दुखी होकर काली है। संध्या मानो सूर्य के शोक में ही अन्धकार का काला आवरण पहन रही है। कमल-कलिकाएँ मानो अपने प्रियतम सूर्य के शोक में ही दुखी होकर, एक पतिव्रता नारी की भाँति व्रत का आचरण कर रही हैं। देश काल की परिस्थिति के प्रति अपनी जागरूकता दिखाने के लिये बाण ने आश्रम में आने वाली इस संध्या को एक तपोवन वासी ऋषि की दृष्टि से ही देखा है। अतः वर्णन में ऐसे चित्रों, कल्पनाओं और उत्प्रेक्षाओं की बहुलता है जो कि एक आश्रमवासी ऋषि के ही सहज, सरल मन में आ सकती हैं। सूर्य अपने पाद (किरण) इसलिए संहृत कर लेता है कि कहीं उदीयमान परमपूज्य सप्तर्षि मण्डल का पैरों से स्पर्श न हो जाय और दोष लगे। वृक्षों पर इधर पड़ने वाली सान्ध्य अरुणिमा ऐसी है मानो वृक्षों पर ऋषियों ने अपने वल्कल वस्त्र टाँग रखे हों। आकाश में उदित होता चन्द्रमा मानो स्वर्ग रूपी आश्रम में तप करने वाला एक तपस्वी है। अन्धकार के द्वारा संसार के सभी पदार्थों के काले हो जाने और केवल ऋषियों के अन्तःकरण के उस कालिमा से बचे रहने की कल्पना जहाँ एक ओर कवि जनोचित हैं वहीं दूसरी ओर दार्शनिक भी। सारे वर्णन में एक और उल्लेखनीय विशेषता है कि इसमें आदि से अन्त तक कहीं भी शृङ्गारिक कल्पनाएँ नहीं हैं। जो कि संस्कृत साहित्य के अन्य प्रकृति वर्णनों में अधिकांश पाई जाती हैं। यद्यपि सायंकालीन कमल-

कलिकाओं का वर्णन विरह विधुरा नायिका के रूप में किया गया है, फिर भी इसमें, उसे व्रत में संलग्न तपस्विनी की भाँति कह कर, पवित्रता के भाव भर दिए गये हैं। सारे वर्णन में, बीच २ में, ऐसी सुन्दर और अद्वितीय उपमाएँ रत्नों की भाँति जटित हैं कि इच्छा होती है कि बाण का अनुकरण कर इस उपमा-रत्न-जटित वर्णन की उपमा उसी तारक-रत्न-खचित आकाश से दें जिसका कि बाण ने इसमें वर्णन किया है। संक्षेप में, यह सन्ध्या वर्णन बाण की नवनवोन्मेषशालिनी और विषयोपयुक्त कल्पना शक्ति का एक भव्य उदाहरण है।

पृष्ठ ५७—परिणतः-अवसानं प्राप्तः, समाप्त हो गया। अर्घविधिम्—पूजाविधिम्—पूजा को। उपपादयता—कुर्वता-करते हुए। स्नानोत्थितेन...रविरुदवहत्-सान्ध्य आकाश में लाल सूर्य ऐसा दिखाई दिया मानों सूर्य ने साक्षात् उस लाल चन्दन के उस अङ्गराग को ग्रहण किया जो कि पृथ्वी में स्नान करके जल से बाहर निकले हुए, सूर्य की पूजा करते हुए ऋषियों ने दिया था। विरलातपो दिवसस्तनिमानमभजत्-कम होते हुये प्रकाश वाला दिन क्षीणता को प्राप्त हुआ। तनिमन्= तनु+इमनिच्। परिपीयमानः तेजः प्रसरः--परिपीयमानः तेजसः प्रसरः यस्य सः—(क्योंकि) इसके प्रकाश का प्रसार. मानो पी लिया जा रहा है। तपोधनैः—तपस्वियों के द्वारा (वे जिनका तप ही धन है, तप एव धनं येषां तैः) ऊर्ध्वमुखैः-ऊपर मुँह किये हुए। यह और आगामी तृतीयान्त पद 'तपोधनैः' से संबद्ध है। अर्कबिम्बनिहितदृष्टिः—अर्कबिम्बे सूर्यमण्डले विनिहिताः सक्ताः दृष्टयो येषां तैः-उनसे जिनकी दृष्टि सूर्य के बिम्ब में लगी हुई है। ऊष्मपैः—ऊष्मं ऊष्माणं पिबन्ति तैः-सूर्य के ताप को पीने वाले (यह एक प्रकार की तपस्या है)। उद्यत्सप्तर्षिसार्थस्पर्शपरि-

जिहीर्षयेव—उद्यन् सप्तर्षीणाम् सार्थः समूहः तस्य स्पर्शः तस्य परिजिहीर्षा परिहर्तुमिच्छा तया—उदित होते हुए सप्तर्षिमण्डल का पैरों से स्पर्श बचाने की इच्छा से। संहृतपादः—संहृताः पादाः किरणाः वा येन—जिसने अपने पाद (पैर या किरण) समेट लिए हैं। भाव यह है कि सायंकाल सूर्य ने अपनी किरणें समेट ली हैं। कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि सूर्य ने अपने पाद इसलिए समेट लिए हैं कि सन्ध्या समय उदित होते हुए सप्तर्षियों को कहीं पैर न लग जाए। ऋषि को पैर से छूने में पाप लगता है।

पृष्ठ ५८—पारावत चरणपाटलरागः—कबूतर के पैर की तरह। अम्बरतलात् अलम्बत—आकाश से नीचे लटकने लगा। आलोहितांशुजालं प्रतिमागतं अपरार्णवे सूर्यमण्डलम्—लाल किरण समूह वाला सूर्य, जिसका प्रतिबिम्ब पश्चिम समुद्र में पड़ रहा था। मधुभिदः नाभि नलिनं इव अलक्षत—मधु को मारने वाले विष्णु के नाभि कमल के सदृश दिखाई दिया। जलशयनगतस्य—(मधुभिदः का विशे०) जल में शयन करने वाले। विगलन्मधुधारम्—(नाभिनलिनं का विशे०) विगलन्ती मधुनो धारा यस्मात्—जिससे मधु की धारा निकल रही है। आलोहितं अंशुजालं यस्य। सूर्य का लाल बिम्ब नाभि में उगे हुए कमल के समान है और उसका किरण समूह कमल से निकलती हुई मधु की धारा के समान है। दिवसावसाने रविकिरणाः—दिन का अन्त होने पर सूर्य की किरणें। विहाय धरणितलं उन्मुच्य कमलिनी बनानि—पृथ्वी के तल को छोड़कर और कमलिनियों के समूह का परित्याग करके। तपोवन...अकुर्वत—तपोवन के वृक्षों के शिखरों पर और पर्वत की चोटियों पर कुछ देर के लिए। ये सभी पद 'शकुनय इव'

के साथ भी लगते हैं। शकुनय इव—जिस प्रकार पक्षी दिवसावसान में पृथ्वीतल और कमलवन को छोड़कर वृक्षों और पहाड़ों पर बसेरा करते हैं। आलग्नरक्तातपच्छेदाः—('आश्रम तरवः' का विशे०) अलग्ना रक्तातपस्य च्छेदाः पुञ्जाः येषु—जिनमें स्थान २ पर लाल धूप पड़ रहा है। क्षणं अशोभन्त—क्षण भर के लिए शोभित हुए। मुनिभिः आलम्बितालोहित वल्कला इव—जिन पर मुनियों के द्वारा लाल वल्कल वस्त्र लटका दिए गए हैं।

सहस्रदीधितिः—हजारों किरणों वाला सूर्य। पाटला संध्या समदृश्यत—गुलाबी रङ्ग के प्रकाश वाली संध्या आई। 'पाटला' विद्रुमलता का विशेषण भी है। अपरार्णवतलादुल्लसन्ती पाटला विद्रुमलता इव—पश्चिम समुद्र के तल से ऊपर उठती हुई लाल रङ्ग की मूँगे की लता के समान। यस्याम्—सन्ध्यायाम्—जिस संध्या में। आवध्यमानध्यानम्—आवध्यमानं ध्यानं यस्मिन्—जिसमें सभी लोग ध्यान बाँध रहे हैं। यह और आगामी पद 'आश्रम पद' के विशे० हैं। एकं देश. . .मनोहराम्—एकदेशे दुह्यमाना या होमार्थी या होमस्य वा धेनवः तासां दुग्धधाराणां यत् ध्वनितम् शब्दः तेन अतिमनोहरम्—एक स्थान पर दुही जाने वाली गायों की दूध की धार से निकलने वाली ध्वनि से सुन्दर। अग्निहोत्र. . .कुशम्—अग्निहोत्र वेद्यां विकीर्यमाणाः हरित्कुशाः यस्मिन्—जिसमें अग्निहोत्र की वेदी पर हरी हरी कुशायें फैला रक्खी हैं। ऋषिकुमारिकाभिः...सिक्थम्—विक्षिप्यमाणाः दिग्देवताभ्यः बलिसिक्थाः यस्मिन्—जिसमें ऋषि की कन्याओं के द्वारा दिशाओं के देवताओं के लिए दिया जाने वाला बलि का अन्न चारों तरफ रक्खा जा रहा है। क्वापि विहृत्य...मुनिभिरदृश्यत्—लाल आँखों वाली (लोहित तारका)

और गुलाबी (पाटला) संध्या मानों दिन के अन्त में इधर उधर विहार करके लौटी हुई ऋषियों के द्वारा देखी गई जैसे कि तपोवन की धेनु हो जो कपिल वर्ण की, लाल आँखों वाली और दिन भर इधर उधर घूम कर चर कर लौटी हो। आगे कवि 'रवि' और 'कमलिनी' का वर्णन नायक नायिका के रूप में करता है। अचिरप्रोषिते सवितरि कमलिनी ...आचरत्—अभी २ सूर्य के चले जाने पर (परदेश अथवा अस्ताचल को), मानों कमलिनी पुनः समागम के लिए व्रत कर रही है। शोक विधुरा—शोकेन विधुरा—शोक से अत्यन्त दुखी। यह और अन्य पद कमलिनी के विशेषण हैं। कमलमुकुलकमण्डलुधारिणी—कमल मुकुलमेव कमण्डलुः तं धारयति—कमल की कली रूपी कमण्डलु धारण करने वाली। हंससितदुकूलपरिधाना—हंसाः एव सितदुकूलं परिधानं यस्याः सा—हंस रूपी श्वेत दुकूल वस्त्र को धारण करने वाली। मृणालधवलयज्ञोपवीता-मृणाल एव धवलं यज्ञोपवीतं यस्याः सा—मृणाल (कमलनाल के तन्तु) रूपी श्वेत यज्ञोपवीत को धारण करने वाली। मधुकर-मण्डलाक्षवलयमुद्वहन्ती—भ्रमर रूपी रुद्राक्ष की माला को धारण करने वाली। अपर...धारयत्—सूर्य जब पश्चिम के समुद्र में गिर पड़ा, तब आकाश में तारे निकल आये, ये तारों के समूह मानों, जल बहुत अधिक उठे हुए छींटे हैं जो कि सूर्य के बड़ी जोर से पश्चिम समुद्र में गिरने से उठे और आकाश तक पहुँच कर वहाँ चारों ओर छा गए। अचिराच्च...वियद्राजत-शीघ्र ही तारों से भरा आकाश इस प्रकार शोभित हुआ, मानों सिद्धों की (देवयोनि विशेष) कन्याओं द्वारा संध्या के समय पूजा में चढ़ाये हुए पुष्पों से भरा हो। तारका संजाता अस्य तारकितम् 'तारकादिभ्यः इतच्, क्षणेन...संध्यारागः-क्षण भर

में ही संध्या का प्रकाश मिट गया, मानों ऊपर की ओर मुख किए हुए ऋषियों के द्वारा ऊपर की ओर फेंके हुए प्रणामार्थ दी हुई जल की अञ्जलियों के जल से धुल गया हो।

पृष्ठ ५६—क्षयमुपगतायां...अवत्-संन्ध्या के नष्ट हो जाने पर उसके विनाश से, मानो, दुखी रात्रि ने काले मृग चर्म के समान अन्धकार का आवरण ओढ़ लिया। अपहायमुनिजन हृदयानि—केवल मुनियों के हृदय को छोड़कर, सर्व...अनयत् अन्धकार ने प्रत्येक वस्तु को काला कर दिया, सर्वत्र अन्धकार फैल गया। क्रमेण च...उपलभ्य—सूर्य अस्त हो गया है, ऐसा समाचार (उदन्त) पाकर—'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्' इत्यमरः। मुख्य वाक्य इस प्रकार है 'अमृत दीधितिः (चन्द्रः) गगनतलं अध्यतिष्ठत्—अमृत की किरणों वाला चन्द्रमा आकाश तल में स्थित हो गया। 'जातवैराग्यः' और अन्य प्रथमान्त पद श्लिष्ट हैं। इनका अर्थ चन्द्रमा और तपस्वी दोनों पक्षों में लगता है। (१) जातं वैरागयं विशिष्टरागता यस्मिन् सः—बहुत अधिक लालिमा वाला। (२) जातं वैराग्यं विरागस्य भावः यस्मिन् सः—वैराग्य धारण करने वाला। (१) धौतदुकूलवल्कलधवलाम्बरः—(१) धौतदुकूलवल्कलवत् निर्मलं अम्बरं आकाशं येन (कृतं) सः—जिससे आकाश धुले हुये स्वच्छ दुकूल वल्कल वस्त्र के समान निर्मल हो गया है। (२) धौतं दुकूलमिव वल्कलमेव धवलं अम्बरं वस्त्रं यस्य सः—धुले हुये स्वच्छ रेशमी वस्त्र का सा वल्कल वस्त्र पहने हुये। सतारान्तः पुरः-ताराः तारकाः एव अन्तः पुराणि तारान्तःपुराणि तैः सह—जिसके अन्तःपुर में तारे (नक्षत्र) अथवा तारा नाम की बृहस्पति की पत्नी जिसका चन्द्रमा ने अपहरण किया था, है। तारा-

अश्विनी, भरणी आदि सत्ताइस नक्षत्र हैं। पौराणिक गाथाओं के अनुसार सत्ताइस नक्षत्र चन्द्रमा की पत्नी हैं। (२) सतारं सगुण ब्रह्म सहितं अन्तःपुरं हृत्पुण्डरीकं अन्तर्वेश्म यस्य समाधिनिष्ठः इत्यर्थः–जिसका अन्तःकरण ब्रह्म के ध्यान में लीन है। 'तमालबनलेखम्' और अन्य द्वितीयान्त पद एक पक्ष में गगनतल और दूसरे पक्ष में आश्रम से सम्बद्ध हैं। पर्यन्तस्थिततनुतमालवनलेखम्—पर्यन्ते स्थितं तनु अल्पं तिमिरं एव तमालबनलेखा यस्य—जिसके किनारों पर स्थित कुछ २ अन्धकार ही तमाल के वनों की पंक्ति है। (२) पर्यन्ते स्थिता तन्वी तिमिरवत् तमालवन लेखा यस्य--जिसके किनारों पर हल्की और अन्धकार की सी काली तमाल वनों की पंक्ति है। सप्तर्षिमण्डलाध्युषितम्—(१) सप्तर्षयः सप्ततारकाः तैः अध्युषितम्—जिसमें सात ऋषि बैठे हैं। अरुन्धतीसंचरणपवित्रम्—(१) अरुन्धती तन्नाम्नी तारिका तस्याः संचरणेन पवित्रम्—अरुन्धती नामक तारे के संचरण से पवित्र। (२) अरुन्धत्याः वशिष्ठस्य पत्न्या संचरणेनं पवित्रम–अरुन्धती नामक वसिष्ठ की पत्नी से पवित्र। उपहिताषाढम्--(१) उपहितां आषाढा पूर्वाषाढ नक्षत्रं यस्मिन्—जिसमें पूर्वाषाढा नक्षत्र समीप ही स्थित है। (२) उपहितः सन्निहितः आषाढ यस्मिन्–जिसमें पलाश के दण्ड हैं। आलक्ष्यमाणमूलम्—(१) आलक्ष्यमाणं मूलं एतन्नामकं नक्षत्रं यस्मिन्—जिसमें मूल नामक नक्षत्र कुछ २ दिखाई दे रहा है। (२) आलक्ष्यमाणानि मूलानि वृक्षमूलानि यस्मिन्–जिसमें वृक्षों की जड़ें कुछ दिखाई दे रही हैं। एकान्तस्थितचारुतारकमृगम्–(१) चारवः ताराः यस्मिन् सः चारुतारक एवंभूतः मृगः मृगशिरा नाम नक्षत्रं चारुतारक मृगः एकान्ते स्थितः चारुतारकमृगः यस्मिन् तत्—जिसमें एक स्थान पर सुन्दर मृगशिरा नाम नक्षत्र

दिखाई दे रहा है। (२) एकान्ते स्थिताः चारवः तारकमृगाः (मृगविशेषा) अथवा चारवः तारकाः कनीनिका येषां तादृशाः मृगा यस्मिन् तत्—जिसमें एक किनारे सुन्दर चित्तीदार हरिण अथवा नेत्रों की सुन्दर पुतलियों वाले मृग वैठे हैं। पूरे वाक्य का अनुवाद इस प्रकार है (क्रमेण...अध्यतिष्ठत्) धीरे २ यह समाचार पाकर कि सूर्य अस्त हो गया है, वहुत अधिक राग (लाली) वाला चन्द्रमा जिसकी किरणें अमृत से भरी हैं, जिसने आकाश को धोकर निर्मल और महीन वल्कल वस्त्र के समान श्वेत कर दिया है, और जिसके अन्तःपुर में तारा अथवा नक्षत्र हैं, उस गगनतल पर आसीन हुआ जिसके किनारे २ तमाल वृक्षों की पंक्ति के समान दिखाई देने वाली अन्धकार की रेखा थी, जिसमें सप्तर्षि का तारामण्डल था, जो कि अरुन्धती नामक तारे के संचरण से पवित्र था, जिसमें पास ही पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र था, जिसमें मूल नक्षत्र कुछ कुछ दिखाई दे रहा था और जिसमें सुन्दर तारों वाला मृगशिरा नक्षत्र एक ओर दिखाई दे रहा था, जैसे कोई तपस्वी जिसमें वैराग्य उत्पन्न हो गया है, जिसने धुले हुये रेशमी वस्त्र का सा वल्कल का श्वेत वस्त्र पहन रक्खा है, जिसके अन्तःकरण में ब्रह्म का ध्यान है, उस आश्रम में बैठता है जिसमें कि किनारे किनारे अंधकार की सी काली तमाल वृक्षों की पंक्ति है, जिसमें सात वड़े २ ऋषि (वशिष्ठ आदि सप्तर्षि) वैठे हैं, जोकि वशिष्ठ पत्नी देवी अरुन्धती के इतस्ततः गमन से पवित्र है, जिसमें पलाश (ढाक) के दण्ड हैं। जिसमें वृक्षों की जड़ें जमीन से कुछ २ निकली दिखाई देती हैं और जिसके एक कोने में चित्तीदार मृग खड़े हैं। अथवा सुन्दर आँखों की पुतलियों वाले मृग खड़े हैं। चन्द्राभरणभृतः—(यह और आगामी पद 'अम्बरतलात्' 'त्र्यम्वकोत्तमाङ्गात्' दोनों के

ही विशेषण हैं) (१) चन्द्र रूपी आभरण धारण करने वाला, (२) गहने की तरह खण्डेन्दु को धारण करने वाला। तारका-कपालशकलालंकृतात्—(१) तारका एव कपालशकलानि तैः अलंकृतात्—तारे रूपी नर कपाल के टुकड़ों से सज्जित, (२) तारका इव कपाल शकलानि तैः अलंकृतात् –तारों के से नर कपाल के टुकड़ों से युक्त। सागराना—पूरयन्ती—(ज्योत्स्ना और गङ्गा दोनों का विशेषण) (१) समुद्रों को (ज्वार-भाटा उठाकर) उमड़ाती हुई, (२) सागरों को (अपने जल से) भरती हुई। हंसधवला—(१) हंसवत् धवला हंसों की तरह सफेद (ज्योत्स्ना)। (२) हंसैः धवला—हंसों के कारण सफेद (गङ्गा) पूरे वाक्य का अनुवाद इस प्रकार है:—चन्द्राभरण...ज्योत्स्ना–हंस की तरह सफेद चाँदनी, ज्वार भाटा उठाकर समुद्रों को उमड़ाती हुई पृथ्वी तल पर–उस आकाश के तल से फैल गई, जिसमें चन्द्रमा का आभरण है और जो कि नरकपाल के टुकड़ों जैसे तारों से भरा है—फैल गई जैसे शिव के सिर से—जिसमें चन्द्रमा का आभरण है तथा जिसमें नरकपाल का तारे सा चमकीला टुकड़ा लगा है–निकल कर हंसों के कारण सफेद दिखाई देने वाली गङ्गा सागरों को अपने जल से भरती हुई पृथ्वी पर फैल जाती है। हिमकर सरसि–चन्द्र रूपी सर में। विकचपुण्डरीकसिते--('हिमकर सरसि' का विशेषण) (१) विकच पुण्डरीकसिते--पूरे खिले कमल की तरह -सफेद (चन्द्र) (२) विकचपुण्डरीकैः सिते—खिले कमलों से सफेद (तालाब)। चंद्रिकापान लोभात्—चंद्रिका रूपी जल पीने के लोभ से—अवतीर्णः—उतरा हुआ। निश्चलमूर्तिः–निश्चल रूप वाला अर्थात् जो हिलता डुलता न हो। अमृतपङ्क लग्नः—अमृतः एव पङ्कस्तस्मिन् लग्नः–अमृत के कीचड़ में फँसा हुआ। हरिणः–

चन्द्रबिम्ब में स्थित मृग । चंद्र कलंक को कवि परम्परा में हरिण माना है । चन्द्रमा, मानों एक अमृत सरोवर है । जिसकी कीचड़ में एक मृग फँसा है। पूरा वाक्य इस प्रकार है–चंद्रमा के भीतर दिखाई देने वाला मृग जो कि हिलता डुलता नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है, मानों, वह, खिले हुए श्वेत कमल के समान चंद्रमा रूपी सरोवर में चंद्रिका रूपी जल पीने के लोभ से उतरा हुआ कोई मृग है जो कि अमृत के कीचड़ में फँस गया है। तिमिरजलधरसमयापगमानन्तरम्--तिमिरमेव जलधरः समयः तस्य अपगमानन्तरम्--अंधकार रूपी वर्षा ऋतु के व्यतीत होने पर । अभिनवसितसिन्धुवारकुसुमपाण्डुरैः—(चन्द्रपादैः और हंसैः दोनों पक्षों में लगता है) अभिनवानि सितानि सिन्धु-वारकुसुमानि तद्वत् पाण्डुरैः—नये खिले हुये सिंधुवार के श्वेत कुसुमों के समान श्वेत, अर्णवागतैः—(यह भी दोनों का विशेषण है।) (१) जल पर गिरने वाली । (२) समुद्र के पास जाने वाले । तिमिरजलधर...चन्द्रपादैः–अंधकार के चले जाने पर ताजे सिन्धुवार के फूलों के समान सफेद चन्द्र किरणें जल पर पड़कर कुमुदों से भरे हुए तालाब के अन्दर घुस गईं जैसे -वर्षा व्यतीत हो जाने पर सिंधुवार के ताजा फूलों के से सफेद और समुद्र के पास जाने वाले हंसों से कुमुद सरोवर भर जाते हैं। विगलितसकलोदयरागम्—('रजनिकर विम्बम्' का विशे०) विगलितः सकलः उदयरागः यस्य--जिसकी उदय काल की सब लाली नष्ट हो गई है। ऐरावत...अलक्ष्यत—एक क्षण ऐरावत हाथी के कुम्भस्थल के समान दिखाई दिया । अम्बरा... सिन्दूरम्—('कुम्भस्थल' का विशे०) आकाश गङ्गा में स्नान करने से जिसका सिन्दूर धुल गया है ।

शुकनासोपदेशः

उज्जयिनी के महाराज तारापीड़ के एक मात्र पुत्र कुमार चन्द्रापीड थे। वैभव और ऐश्वर्य के गोद में पले हुए कुमार जब गुरुकुल में विद्याध्ययन कर चुके, तब उनके पिता ने उन्हें युवराज बनाने का विचार किया। इसी अवसर पर महाराज तारापीड के मुख्य अमात्य शुकनास जो कि एक अत्यन्त बुद्धिवान्, दूरदर्शी और शासन-पटु व्यक्ति थे, ने राजकुमार को एक अत्यन्त शिक्षाप्रद और आदर्श उपदेश दिया। वही उपदेश कुछ संक्षिप्त करके, यहाँ दिया गया है। शुकनासोपदेश कादम्बरी का एक अत्यन्त भव्य अंश है जो कि बाण की उदात्त कल्पना, सहज और अधिकार-पूर्ण वर्णन शक्ति, तथा सांसारिक और राज सभाओं के जीवन के उनके अनुभव का प्रमाण देती है। मानव-जीवन की अनेक दुर्बलताओं का, जिनकी ओर युवक बड़ी जल्दी आकृष्ट हो जाते हैं, अत्यन्त यथातथ्य वर्णन किया गया है। लक्ष्मी की क्षणभंगुरता अत्यन्त समीचीन और उपयुक्त दृष्टान्तों द्वारा समझायी गई है। धन के मिथ्या अभिमान में फूले हुये और चाटुकारों के आपाततः मधुर वाग्जाल में बड़ी जल्दी फँस जाने वाले व्यक्तियों का चित्र तीखे व्यङ्ग और श्लाघ्य हास्य के साथ सुन्दरता से अङ्कित किया गया है। विषय-वासनाओं से इंद्रियों को रोकने की महान् आवश्यकता वृद्ध मंत्री ने बड़े अधिकारपूर्ण ढङ्ग से जोर देकर समझाई है। युवावस्था में, जबकि विस्तृत संसार में मनुष्य को पदार्पण करना होता है, शुकनास के गम्भीर उपदेश का मनन करना अत्यन्त लाभप्रद हो सकता है; क्योंकि यह हमारे दृष्टि-कोण को विस्तृत और उदार करता है। हमारी दुर्वासनाओं

का दमन करता है, और हमारी सांस्कृतिक परम्परा का योगक्षेम प्राप्त करता है।

विदितवेदितव्यस्य (ते)—जानने योग्य सभी बातों को जानने वाले, तुम्हारे। केवलं च– केवल इतनी बात है कि। निसर्गतः एव–स्वभावतः एव–स्वभाव से ही। अभानुभेद्यम्—सूर्यरश्म्या अपि अनुच्छेद्यम्–सूर्य की किरणों से भी जिसका भेद नहीं किया जा सकता है। यह और आगामी पद 'तमः' के विशेषण हैं।

पृष्ठ ६०—अरत्नालोकोच्छेद्यम्—रत्नप्रभया अपि दूरीकर्तुं अशक्यम् = जो रत्नों के प्रकाश से भी दूर नहीं किया जा सकता। अदीपप्रभापनेयम्–प्रदीपस्य प्रभया आलोकेन अपि नाशानार्हम्–अच्छे शक्तिशाली दीपक के प्रकाश से भी दूर नहीं किया जा सकता। अतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्– युवावस्था में आने वाला अविवेक का अंधकार अत्यन्त अभेद्य है। अरत्नालोकसंहार्य-मचार्यं सर्यरश्मिभिः। दृष्टिरोध करं यूनां यौवनप्रभवं तमः॥ –काव्यादर्शः २, १२७। इत्यता विस्तरेणाभिधीयसे–इसी कारण तुम्हें विस्तार से समझाया जा रहा है। गर्भेश्वरत्वम्,–गर्भात्-प्रभृति गर्भ संभवादारभ्य ईश्वरत्वं धनसम्पन्नता–गर्भ से अथवा जन्म से ही धन-सम्पत्ति का होना। अभिनवयौवनत्वम्–नवयौवन–अप्रतिरूपत्वम्–असमसौन्दर्यत्वम्–अनुपमेय सौंदर्य का होना। अमानुषशक्तित्वम्–अतिमानव शक्ति का होना। महतीयं खलु अनर्थ परम्परा–सभी अनर्थकारी वस्तुओं का यह बड़ा विकट संयोग है। सर्व...आयतनम्—इनमें से प्रत्येक सब प्रकार के अविनयों का घर है। किमुत समवायः–फिर इन सबके समूह के लिये क्या कहा जाय! यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता। एकैकमप्यनर्थायकिमु यत्र चतुष्टयः। हितोपदेशः। शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलाऽपि–शास्त्रमेव जलं तेन यत् प्रक्षालनं

तेन निर्मला अपि निर्गतः अज्ञानरूपमलः यस्याः तादृशी अपि—शास्त्रों के अध्ययन रूपी जल से धुलकर निर्मल (शिष्ट) होने पर भी। कालुष्यं उपयाति—सदसद्विवेकाक्षमा भवतीत्यर्थः—काली हो जाती है-सत् और असत् का विवेक खो देती है। अनुज्झित...दृष्टिः—युवकों की दृष्टि, यद्यपि अपनी सफेदी को नहीं छोड़ती है, फिर भी सराग (लाल, वासनायुक्त) हो जाती है। समुद्भूतरजो भ्रान्ति—(प्रकृतिः और वात्या दोनों का विशे०) (१) समुद्भूता रजो गुणेन भ्रान्तिः भ्रमं यस्याम्—जिसमें रजोगुण के उद्रेक से वस्तुओं का अयथार्थ ज्ञान होता है। रजोगुण के अतिरेक से मन वासनामय हो जाता है और विवेक कम हो जाता है। यथा—'रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णा-संगसमुद्भवम्', लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा। रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभः ॥गीता। (२) समुद्भूता रजसः धूलेः भ्रान्तिः भ्रमणं यस्याम्—जिसमें धूल चक्कर बाँधकर उड़ती है। अपहरति च पुरुषं प्रकृतिः—युवावस्था में मनुष्य की प्रकृति, जिसमें रजोगुण के अतिरेक से भ्रम हो जाता है। अर्थात् सभी बातें उलटी समझ में आती हैं, मनुष्य को स्वयं दूर खींच ले जाती है जिस प्रकार बवण्डर, जिसमें चक्कर बाँधकर धूल उड़ती है, अपने में पड़ी हुई पत्ती को दूर उंड़ा ले जाता है इन्द्रियहरिणहारिणी—इन्द्रियाणि करणानि एव हरिणाः तेषां हारिणी विलोभिनी-इन्द्रिय रूपीं मृगों को लुभाने वाली। दुरन्ता—नाशकारी परिणाम वाली, अथवा अन्त रहित। उपभोग मृगतृष्णिका—विषय-भोग रूपी मृगतृष्णा। कषायित-कसैला किया हुआ। नवयौवन...मनसः-नवयौवन के जोश से युक्त मन को भिन्न २ प्रकार के विषयों के उपभोग, जिनका कि वह अनुभव करता है, उसी प्रकार अधिक अच्छे लगते हैं

जिस प्रकार कसैला मुख हो जाने पर जल अधिक मीठा लगता है। दिङ्मोहः—दिशाओं सम्बन्धी भ्रम अथवा मार्ग भ्रष्ट हो जाना। उन्मार्ग प्रवर्तकः–(१) उत्क्रान्तो मार्गात् उन्मार्गः कुपथ. तत्र प्रवर्तयतीति–जो मनुष्य को बुरे रास्ते ले जाता है अथवा धर्म के मार्ग से विचलित कर देता है। (अत्यासङ्गः के पक्ष में) (२) उन्मार्गे अपथे प्रवर्तयतीति—गलत (अन्यत्र ले जाने वाले) रास्ते पर लगा देता है (दिङ्मोहः के पक्ष में) नाशयति... अत्यासङ्गो विषयेषु–विषयों में अत्यन्त आसक्ति मनुष्य को कुमार्ग पर ले जाती है और अन्त में उसे नष्ट कर देती है, जैसे दिग्भ्रम मनुष्य को गलत रास्ते पर डाल कर कष्ट देता है। अमल (१) सरल भावार्थ वाले (गुरुवचन), (२) निर्मल, स्वच्छ जल। श्रवण-स्थितम्—(१) सुने हुए (गुरुवचन), (२) कान में भर जाने वाला (जल)। शूल—(१) अच्छा न लगना। (२) दर्द। अभव्यस्य–भवतीति भव्यः साधुः सः न भवति तस्य असाधोः अयोग्यस्य—दुष्ट व्यक्ति का; दुर्भाग्य वाले व्यक्ति का। गुरुवचनम्....शूलमभव्यस्य—गुरुओं के सीधे और सरल वाक्य भी दुष्टजनों के कानों में जाकर उसे अप्रिय लगते हैं, जिस प्रकार जल, निर्मल होकर भी, जब कान में भर जाता है, पीड़ा उत्पन्न कर देता है। अपगतमले—अपगताः मलाः संशय विपर्यय मोहादिरूपाः यस्मात् सः—संशय, विपर्यय, मोह आदि मलों से रहित (मन में) अपगतमले हि मनसि...उपदेश गुणाः—मन जब दोष रहित होता है तभी उसमें उपदेश की हितकारक बातें घुसती हैं। जैसे साफ किये हुए स्फटिक में ही चन्द्रमा की किरणें घुसती हैं। यथा—धीरेषु सत्कवि वचो लभतेऽवकाशम्। प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदां चयः॥ अनास्वादित विषयरसस्य ते-विषयभोग से बिल्कुल अलग रहने

वाले तुम-गुरूपदेशश्च नाम...आदि गुरुओं का उपदेश निश्चित रूप से जो २ कल्याण करता है, अब लेखक उसका वर्णन प्रभावशाली रूपकों द्वारा करता है। अखिलमल प्रक्षालनक्षमं अजलं स्नानम्-गुरु का उपदेश एक ऐसा स्नान है जो बिना जल के ही किया जाकर भी सब प्रकार के (अज्ञान संभव) मल को सर्वथा दूर कर देता है। अनुपजातपलितादि वैरूप्यं अजरं वृद्धत्वम्—गुरूपदेशो नाम अजरं जराव्यतिरेकेणाऽपि वृद्धत्वं तत्कार्य-कारणत्वात् तया चास्मिन् पलितादयो विरूपताकारिणो दोषाः न प्रादुर्भवन्ती त्यहो महिमा गुरूपदेशस्य—गुरूपदेश वृद्धावस्था की तरह है (वृद्धावस्था में आने वाले अनुभव आदि सभी गुणों को उत्पन्न कर देता है) जिसमें कि मनुष्य (आयु से) बुड्ढा नहीं होता और न इसमें शरीर में कुरूपता ही आती है। यथा-'न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः। यो वै युवाऽप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥' मनुः । अनारोपित मेदो दोषं गुरूकरणम्-अनारोपितः अकारितः मेदो दोषः येन एवंभूतः गुरूकरणं स्थूलीकरणम्-यह शरीर में मेदस् (चर्बी) बढ़ाये विना ही मनुष्य को भारी कर देता है (महत्त्व देता है)। असुवर्ण विरचनं अग्राम्यं कर्णाभरणम् नास्ति सुवर्णस्य विरचनं घटना एतादृक् कर्णाभरणं कर्णभूषणम् अग्राम्यं सुन्दरं च-यह ऐसा कान का आभूषण है जो न तो सोने का बना है और न ग्राम्य (गँवारू) है। अर्थात् गुरू का उपदेश उस व्यक्ति को, जो उसे सुनता है, सभ्य और शिष्ट बना देता है। अतीत ज्योतिः आलोकः-यह बिना दीपक का प्रकाश है। अर्थात् अन्तःकरण में जलकर प्रकाश देने और अज्ञानान्धकार दूर करने को यह प्रकाश अन्य प्रकार के प्रकाशों से विलक्षण है। नोद्वेगकरः प्रजागरः-यह जागरण है (कर्तव्य और धर्म के प्रति जागरूकता)

जो कि कष्ट नहीं देता। विशेषेण तु राज्ञाम्—ये सब बातें राजाओं के लिये तो विशेष रूप से सुनने योग्य हैं। अहंकार दाह ज्वरमुच्छान्धकारिता-अहंकार एव दाहज्वरः संतापकारी ज्वरः तेन या मूर्छा तया अन्धकारिता लुप्तसंज्ञा—अहंभाव रूपी दाहक ज्वर से आने वाली मूर्छा से जिसकी चेतना मिट गई है। विह्वला-व्याकुल, स्तब्ध कर्तव्य ज्ञान-शून्य। राजप्रकृतिः--राजस्वभावः--राजाओं का स्वभाव। अलीकाभिमानोन्माद-कारीणि धनानि-अलीकः मिथ्या यः अभिमानः गर्वः आत्मन्युत्कर्षारोपो वा स एवोन्मादो व्याधिविशेषो, यद्वा अलीकाभिमानेन यः उन्मादः चित्त विभ्रमः तं कुर्वन्ति एवं शीलानि धनानि--धन झूठा अभिमान रूपी उन्माद रोग (चित्तभ्रम, अविवेकता) पैदा करने वाला होता है। यथा--मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः। मानसोऽयायतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः' ॥ राज्य विषविकार तन्द्राप्रदा--राज्यं एव विषं तेन य विकारः विकृतिः तेन कृता या तंद्रा प्रमीला तत्प्रदा—राज्य रूपी विष के प्रभाव से आने वाली निद्रा (अविवेकता) देने वाली।

यहाँ शुकनास चन्द्रापीड को 'कल्याणाभिनिवेशी' कल्याण-कारी कार्य करने के लिए कटिबंध--कल्याणे अभिनिवेशः (आग्रहो यस्य सः) कह कर इस बात का संकेत करता है कि चन्द्रापीड उसके उपदेशों को सुनने का योग्य अधिकारी है। दृढगुणपाशसंदाननिष्पंदीकृता—दृढं यत् गुणाः सौर्यादयः यद्वा 'संधिर्ना' विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयः। 'षड्गुणाः' इति नीतिशास्त्रसंमताः गुणाः ते एव पाशाः तैः संदानं बन्धनं तेन निष्पन्दीकृता निश्चलीकृता—रस्सी के पाश के मजबूत बन्धन से जकड़ी हुई भी अथवा शौर्य, औदार्य अथवा राजनीति कथित षड्गुण आदि से परिश्रमपूर्वक उपार्जित करके स्थायी

बनाई हुई। नाभिजनमीक्षते—ऊँचे नीचे कुल का विचार नहीं करती है। न वैदग्ध्यं गणयति–वाक्चातुर्य को भी कुछ नहीं समझती है। न त्यागमाद्रियते—त्याग के लिए भी अपने मन में आदर नहीं रखती है। विशेषज्ञता—सदसद् का विवेक होना। अब उत्प्रेक्षा द्वारा लक्ष्मी की अस्थिरता का वर्णन करते हैं। कमलिनीसंचरणव्यतिकरनलिननालकण्टकेव—कमलिनीषु संचरणव्यतिरेकेण संचरणयोगेन लग्नाः नलिननालस्य कण्टकाः यस्याः तद्वत्–मानों कमलिनी के वनों में घूमने से इसके पैर में कमल-नाल के काँटे लग गए हों। अतएव न क्वचित् निर्भरं आवध्नाति पदम्—अतः कहीं निश्चिन्त होकर पैर नहीं रखती है। अथवा, पद=स्थान—काँटे लगे होने के कारण कहीं बैठने का स्थान निश्चिन्त होकर नहीं बनाती या नहीं बैठ सकती यथा यथा...केवलमुद्वमति—ज्यों-ज्यों यह चञ्चल लक्ष्मी अपना प्रकाश दिखाती अर्थात् किसी मनुष्य के पास रहती है त्यों-त्यों यह काले कामों को ही (बुरे कामों को ही) उत्पन्न करती है, जैसे दीपक की लौ ज्यों २ जलती है त्यों २ काजल पैदा करती है। निर्भरं उपगूढः—प्रगाढ़ आलिङ्गन किया हुआ; ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसके पास लक्ष्मी हरदम रहती हो। विप्रलब्धः ठगा हुआ। जब मनुष्य को लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है, और वह उसका उपभोग करने की इच्छा करता है तभी लक्ष्मी उसे छोड़कर चली जाती है। आलेख्य गताऽपि चलति—चित्र में अङ्कित होने पर भी चलती है। पुस्तकमयी अपि—पुस्तकों में केवल लिखी हुई होकर भी। इन्द्रजालं आचरति–जादू का सा लाघव करती है। उत्कीर्णा—(उत्+कृ+क्त) पत्थर आदि पर खुदी हुई। विप्रलभते—धोखा देती है। अभिसंधत्ते—धोखा देती है।

दुराचारया–दुष्ट आचरण वाली। कथमपि दैववशेन

परिगृहीता—किस प्रकार उस दुराचार (लक्ष्मी) के द्वारा ग्रस्त। विक्लवाः-सर्वतो हताः=हर तरफ से हत, दुखी। सर्वाविनयाधिष्ठानतां गच्छन्ति-सब प्रकार की बुराइयों के घर हो जाते हैं। दाक्षिण्यं प्रक्षाल्यते-उदारता नष्ट कर दी जाती है। अपह्रियते-अपहरण कर लिया जाता है, दूर कर दी जाती है। उत्सार्यन्ते-भगा दिए जाते हैं। श्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटचापलाभिः—श्रमवशात्—आयास हेतुना शिथिलं श्लथं यत् पारावतमयूरादिशकुनीनांगलपुटं तद्वत् चापलाभिः चञ्चलाभिः—श्रम से थके हुये कबूतर मोर आदि पक्षियों के गले के समान (हाँफने के कारण) चञ्चल। यह और आगामी दो तृतीयान्त पद 'संपद्भि' के विशेषण हैं। खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिः—खद्योतः ज्योतिरिङ्गणः तस्योन्मेषवत् मुहूर्तं क्षणं मनोहराभिः—जुगनू की चमक के समान केवल क्षण भर मनोहर लगने वाली। मनस्विजनगर्हिताभिः-बुद्धिमानों के द्वारा निन्दित। प्रलोभ्यमानाः—लुब्ध किये हुए। आसन्न मृत्यव इव—मानों मृत्यु के समीप स्थित। न अभिजानन्ति-नहीं पहिचानते। पापेन इव आध्मातमूर्तयः (स्फीत देहाः) भवन्ति—मानों पेट के कारण मोटे हो रहे हों।

व्यसनशतशरव्यतां उपगताः—व्यसनानां मृगया मद्पान स्त्रीसेवन दुरोदरादीनां शतं तस्य शरव्यतां लक्ष्यतां उपगताः व्यसनवशं याताः इत्यर्थः—दुर्व्यसन रूपी सैकड़ों बाणों का लक्ष्य बनाने वाले। वल्मीकतृणाग्रावस्थिताः--बाँबियों के ऊपर उगने वाली घास के अग्रभाग में स्थित। पतितम्--गिरा हुआ नीचा। वाक्य इस प्रकार है-अपरैः धूर्तैः स्तुतिभिः प्रतार्यमाणा सर्वजनस्योपहास्यतां यान्ति। स्वार्थनिष्पादनपरैः—अपना निजी स्वार्थ सिद्ध करने वाले। आगे के पद 'धूर्तैः' के विशेषण हैं। धनपिशितग्रास गृध्रैः—धनमेवपिशितं आमिषं तस्य ग्रासे गृध्रैः

आतगृध्नुभिः-धनरूपी मांस के ग्रास के लिए गिद्ध के समान (लोलुप)। आस्थान नलिनीवकैः-आस्थानं राजसभा तदेव नलिनी कमलिनी तस्यां बकैरिव स्थितैः राजसभा रूपी कमलिनी के वन में खड़े हुए बगलों के समान धूर्त लोग मछली रूपी शिकार चतुरता से झपटते हैं। 'द्यूत विनोद इति' का सम्बन्ध दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिः-ये धूर्त राजा को समझाते हैं कि 'जूआ तो विनोद है'; और उन्हें द्यूत के लिए उत्साहित करते हैं और अपना स्वार्थ बनाते हैं। पान विलास इति--शराब पीना आनन्द दायक विलास है। प्रमत्तता शौर्यमिति-लापरवाही साहस है। गुरुवचनावधीरणं अपरप्रणेयत्वम् इति-बड़ों की आज्ञा का उल्लङ्घन करना स्वतन्त्रता है। अपरप्रणेयत्वम्-दूसरों के द्वारा न ले जाया जा सकना। स्वच्छन्दता प्रभुत्वं इति--अपनी इच्छानुसार कार्य करना प्रभुता सूचक है। तरलतोत्साह इति— विना सोचे हुये शीघ्र काम करना उत्साह है। दोषानपि गुण-पक्षमध्यारोपयद्भिः--दोषों को भी गुण बताने वाले । प्रारब्ध-दिव्योचित चेष्टानुभावाः प्रारब्धाः दिव्योचिताः देवतोचिताः याः चेष्टाः ताः ताः क्रियाः ताभिः अनुभवः माहात्म्यं येषाम्--दिव्य बड़े लोगों की चेष्टायें और उनके बड़प्पन का मिथ्यानुकरण करने वाले। उपहास्यतामुपयान्ति--हँसे जाते हैं।

दर्शन...गणयन्ति-दर्शन देने को ही कृपा समझते हैं। दृष्टि...स्थापयन्ति—केवल देख लेने को ही उपकार करना मान लेते हैं। स्पर्श...कलयन्ति—अपने स्पर्श को ही पवित्र कर देने वाला समझ लेते हैं। मिथ्यामाहात्म्यगर्व निर्भराः— अपने झूठे बड़प्पन के गर्व से भरे हुये। नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्-- बड़ों का सत्कार करने के लिए खड़े नहीं होते। जरावैक्लव्य प्रलपितं इति—जरया यद् वैक्लव्यं यद् विकलता तस्मात् प्रलपितं

जल्पितम्—वृद्धावस्था में खराब हो जाने वाली बुद्धि की वकवाद आत्मप्रज्ञापरिभव इति—अपनी निजी बुद्धि की हार। असूयन्ति सचिवोपदेशाय—सचिवों की मन्त्रणा से ईर्ष्या करते हैं। 'असूयन्ति' के योग में सचिवोपदेश में चतुर्थी है—'क्रुद्धद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः'। पार्श्वे कुर्वन्ति—अपने बगल में बैठा लेते हैं। तं संवर्द्धयन्ति—तं बहुमन्यन्ते—उसे बहुत मानते हैं। तं आप्ततां आपादयन्ति-उसे विश्वास योग्य बनाते हैं। उपरचिताञ्जलिः—हाथ जोड़कर। अधिदैवतम--स्वामी, देवता। विगतान्यकर्तव्यः—अन्य कर्तव्य से परांमुख। महात्म्यं उद्भावयति—प्रशंसा करता है।

एवं प्राये—अधिकतर इस प्रकार के। राज्यतन्त्र—शासन नीति अथवा राज्य का प्रकार। महामोहकारिणि—अत्यन्त मोह उत्पन्न करने वाला। उपालभ्यसे—समझाये जाते हो। न अवलुप्यसे सेवकवृकैः—कहीं ऐसा न हो कि सेवकों रूपी भेड़ियों से खा लिए जाओ। न प्रलोभ्यसे—लुब्ध न किए जाओ। वनिता--स्त्री अभूतपूर्व सौन्दर्य वाली,--यथा, सा कविता सा वनिता यस्याः श्रवणेन दर्शनेनापि। कविहृदयं विटहृदयं सरलं तरलं च सत्वरं भवति। न उन्मत्तीक्रियसे—उन्मत्त नहीं बना दिये जाते हो। आक्षिप्यसे—कुमार्ग पर ले जाये जाते हो। विषयैः-विषय भोग द्वारा। विकृष्यसे—दूर ले जाये जाते हो अर्थात् वश में कर लिये जाते हो। सुखेन—सुखोपभोग के द्वारा। कामम्--चाहे, भले ही क्यों न हो। समारोपित संस्कारः—जिसका संस्कार किया जा चुका है। तरलहृदयां—चञ्चल मन। अप्रतिबुद्धम्—जिसमें ज्ञान अथवा शिष्टता नहीं उत्पन्न हुई है। मदयन्ति--समद कुर्वन्ति-नशे में कर देते हैं। भवद्गुणसंतोषः—तुम्हारे गुणों को देखकर होनेवाला संतोष।

मुखरीकृतम्—कहने के लिए प्रेरित किया। अभिजातम्—ऊँचे वंश में जन्म लेना। विली करोति—दुष्ट बना देती है। कल्याणैः—कल्याण से युक्त। कुलः...धुरम्-कुलक्रम से आये हुए उस भार को वहन करो, जिसे तुम्हारे पूर्वजों ने किया। अवनमय द्विषतां शिरांसि—शत्रुओं के शिर झुका दो। उन्नमय-ऊँचा करो। अयं च ते कालः प्रतापमारोपयितुम्—अपना प्रताप बढ़ाने का तुम्हारे लिए यही समय है। आरूढ़-प्रतापो हि राजा—ऐसा राजा जिसका प्रताप फैला है। त्रैलोक्य दर्शी इव सिद्धादेशो भवति—तीनों लोकों की बात जानने वाले ऐसे व्यक्ति के समान हो जाता है। उसने जो कुछ कहा वह ठीक है। भाव है उसकी आज्ञा सच्चे मन से सर्वथा मानी जाती है।

———

भूषणकवेः शिवराजेन सह समागम

महाराज शिवाजी केवल एक वीर योद्धा और हिन्दू धर्म के दृढ़ स्तम्भ ही नहीं थे, अपितु वे कला और विद्वत्ता के भी महान् पारखी थे। अनेक अच्छे अच्छे कलाकार और कवि मुगल सम्राट् औरङ्गजेब, जो कि कला और विद्या का द्रोही और स्वभाव से दुष्ट था, का दरबार छोड़ २ कर, महाराज शिवाजी का आश्रय प्राप्त करने के लिए उनकी राजसभा में आया करते थे। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि भूषण भी उन कवियों में से एक थे। भूषण वीर रस के एक बड़े अच्छे कवि थे और उन्होंने शिवराज भूषण' और 'शिवा वावनी' नामक दो पुस्तकें 'शिवाजी की प्रशंसा में लिखी थीं। स्व० पं० अम्बिकादत्त व्यास (१८५८-१९०० ई०)

द्वारा रचित 'शिवराज विजय' नामक ग्रंथ से उद्धृत यह अंश महाकवि भूषण के शिवाजी के सम्पर्क में आने की घटना का विशद और रोचक रूप से वर्णन करता है। व्यास जी का सरल, सुन्दर और अधिकार पूर्ण गद्य बाण के गद्य का स्मरण करा देता है।

पृष्ठ ६४—सिंह दुर्गाविदूरे एव–सिंह दुर्गात् अतिदूरे नातिदूरे एव–सिंहगढ़ के समीप ही। शादः–कोमल हरी हरी घास। कलितप्रसादायाम्—स्वच्छ भूमि में। निष्कृपकृपाणपाणिः–(दुष्टेषु) निष्करुणः कृपाणः पाणौ यस्य–हाथ में दारुण तलवार लिए हुए। कंचुकाच्छादित कठिनकवचः–कंचुकेन आच्छादितः कठिनः कवचः येन–जिसने अपने कठोर कवच को कंचुक वस्त्र से ढक रखा है। कलितसैनिकभटवेषः—वीर सैनिक का वेष धारण किये हुए। दुग्धधारयेव...पथिभिः—चन्द्रमा की ज्योति से इस प्रकार प्रकाशित मानों–दूध की धारा से धोये हुए–मार्ग से। आरात् आजगाम—सपीप आया। 'आराद् दूर समीपयोः' इत्यमरः। द्वारि—(शिव मन्दिर के) द्वार पर। रेणुरुषितकुहरम्—रेणुभिः पांसुभिः रुषितानि रोम्णां कुहराणि यस्य—जिसके रोमकूपों में धूल भरी हुई थी। यह और अन्य द्वितीयान्त पद 'अश्वम्' के विशेषण हैं। शफोत्फालितमृत्स्नास्नातम्—शफैः उत्फालितया मृत्स्नया स्नातम्—टापों से उठी हुई धूलि से भरा हुआ। 'प्रशस्ता तु मृत्सा मृत्स्ना च मृत्तिका' इत्यमरः। त्वरितगतिश्वासप्रश्वाससहचरितहिणकारसूचितक्लमम्–त्वरितगतिभिः श्वास प्रश्वासैः सहचरितः यः हिणत्कारः ह्रेषितं तेन सूचितः क्लमः यस्य—तेजी से चलने वाली श्वास के साथ निकलने वाली हिनहिनाते की आवाज से जिसकी थकावट से प्रकट हो रही है। ग्रीवां उद्धूय—गर्दन को हिलाकर। पौनःपौन्येन–बारम्बार।

विलुण्ठन्तम्—लोटते हुये। इति मनसि विचिन्वन्—मन में ऐसा सोचते हुए। चुचुत्कार--चुमकारना। हरिततृणभारम्—हरी घास का गट्ठा। विवर्णवदनम्-उतरे हुए चेहरे वाला। आजानु-धूलिधूसरितचरणयुगलम्-जिसके दोनों पैर घुटने तक धूलि में भरे हैं। मन्थरितशरीरम्—शिथिल शरीर वाले। स्वकार्यसंलग्नः-अपने कार्य में फँसा हुआ। अन्यमनस्कः-मन को और कहीं लगाए हुए, अनवधान। उट्टङ्कयसि-पूछते हो। घटिका युगलं अतिवाह्य—दो घड़ी का समय बिताकर। चौबीस मिनट की एक घड़ी होती है। पूरितजठरपिटकः—पेट रूपी पिटोरे को भर कर; भोजन करके। 'पिटकः पेटका पेटा मंजूषा' इत्यमरः। ताम्रक धूम्रपानैः गलनलं कवोष्णयन्—तम्वाकू के धूयें से गले को जरा गरम करते हुए। 'तम्वाकू' के लिए 'ताम्रक' शब्द व्यास जी के द्वारा बनाया गया है। अध्वपरिश्रमं अल्पयिष्यामि--मार्ग की थकावट को हल्का करूँगा। पृष्ठ ६५-घोटके-घोड़े पर। तत्प्रकृतिंविज्ञाय परिज्ञाय—उसके चिड़चिड़े स्वभाव को। जानकर। परिवृत्य—पीछे घूमकर।

चरः—जासूस। सन्देशहरः-दूत। कपटपथिकः-बनावटी यात्री। अस्मत्पक्षपाती--हमारे पक्ष का। शत्रुपदातिः-शत्रु का पैदल सिपाही। उभयपक्षोदासीनः—दोनों पक्षों से उदासीन—न शत्रु, न मित्र। सद्य एव विज्ञेयम्—तत्काल जानना चाहिए। मन्दिरपाश्चात्यप्राचीरगवाक्षात्--मन्दिर के पश्चिम की तरफ की दीवाल की खिड़की से। अस्पष्टालापध्वनिम् बातचीत की साफ न सुन पड़ने वाली आवाज। ध्वनिप्रतिध्वनिभिः—प्रतिध्वनि से। अव्यक्तांशुबहुलाम्—जिसका अधिकांश भाग साफ न सुनाई देता हो। निश्चिच्ये--निश्चिन्त किया। दिल्ली—अध्युषितोस्मि—दिल्लीश्वर के श्रेष्ठ पाणिपल्लव की छाया में बहुत दिनों तक रहा हूँ।

समासान्त में तद्धज पुल्लिङ्ग होता है। प्रतापित्वम्–प्रतापसम्पन्न होना। अढ्यत्वम्–धनसम्पन्नता। अपेक्षामहे–परवाह करते हैं।

साभिमानभ्रूभङ्गम्–अभिमान से भौंहों का टेढ़ा करना। उत्तुङ्गकोपाञ्चिताखर्वं गर्वं वर्वरताम्–भारी क्रोध और गर्व से उत्पन्न होने वाला जङ्गलीपन। न तस्य...सारस्वतसृष्टौ–सरस्वती (विद्या) के क्षेम में जैसा हमारा अधिकार है, वैसा पृथ्वी पर उसका नहीं है। तदीहासमकालमेव–उसकी इच्छा के साथ ही साथ। बद्धकरसम्पुटाः–हाथ जोड़े हुए। यथोचितावस्थानाः –अपने २ उचित स्थान पर बैठे हुए। छन्दाँसि–छन्द काव्य। रीतयः–काव्य की रीतियाँ। स दीनार...पारयामः–हम केवल वाणी से ही दूसरों को जिस प्रकार सन्तुष्ट करने में समर्थ हैं वह मुद्राओं के भार से भी दूसरों को सन्तुष्ट नहीं कर सकता है। आकलय्य–सुनकर। चिरावस्थायिनी कीर्तिः–बहुत समय तक रहने वाली कीर्ति। पृष्ठ ६६–समुद्रकल्लोलघातसहं यशः–समुद्र की लहरों के थपेड़े को सहने वाला अर्थात् समुद्र तक फैला हुआ यश। स एव अस्मान् आद्रियते–वही हमारा आदर करता है। मीनान् इव पीनान्–मछलियों की तरह मोटे। इभान् इव तुन्दिलान्–हाथी की तरह भारी पेट वाले। भेकान् इव निर्विवेकान्–मेढकों की तरह विवेकी। वृषदंशकान् इव कपत-हिंसकान्–बिल्ली की तरह कपट से हिंसा करने वाले। ओतुर्बिडालो मार्जारो वृषदंशक आखुभुक्। इत्यमरः। काकान् इव आस्वादितदुर्विपाकान्–गन्दगी खाने वाले कौए की तरह जिसने अपने कर्मों का फल भोग कर लिया है। द्विजिह्वान् इव द्विजिह्वान्–साँपों की तरह चुगलखोर और अहित करने वाले। सजीवान् इव उपवर्हान्–बड़े २ तकियों की तरह मोटे। आत्मस्तुतिमात्र रुचीन्–अपनी स्तुति सुनने की ही

जिन्हें रुचि है। मूर्तिमत् इव अभिमानान्—अभिमान के मानों मूर्तिमान् स्वरूप। गुणिगणगुणग्रहणासमर्थान—गुणियों के गुणों को ग्रहण करने में असमर्थ। मिथ्यामोदरतान्—झूठे मनोरञ्जन में व्यस्त। नृपंमन्यान्—अभिमानी राजा। समुपाम्महे—आश्रय लेते हैं। दिल्लीश्वरपदविडम्बनम्—दिल्लीश्वर पद को धारण करके उसका अपमान करके, अर्थात् इस पद के सर्वथा अयोग्य। तत्सम्बन्धसूत्रं त्रोटयित्वा—उससे सम्बन्ध के सूत्र को तोड़कर। रसिकान्तरम्—काव्य रस के ज्ञाता अन्यव्यक्ति को। तस्यैव दिल्लीवलयकलङ्कस्य लालाटिकः—दिल्ली क्षेत्र के कलङ्क रूपी उसी सम्राट् का मुँह देखते रहने वाला दास। 'लालाटिक'—वह भृत्य जो अपने स्वामी का मस्तक सदा देखा करता है और उसकी इच्छा विना कहे ही जानकर तदनुसार कार्य करने के लिए उद्यत रहता है। ललाटं कोप प्रसाद चिन्हं पश्यति, ललाटमेव वा दूरात् कार्येषु लिप्तः सन् पश्यति स लालाटिकः। 'लालाटिकः प्रभोर्भालदर्शी कार्यक्षमश्च यः' इत्यमरः। श्रावं श्रावं—बार बार सुनकर। दिदृक्षुः—दर्शन की इच्छा वाला। ऊरीकृत्य—(कवि) समझ कर। प्रदक्षिणच्छलेन—परिक्रमा देने के वहाने। पान्थाध्युषितप्रदेशम—उस स्थान पर जहाँ की वह यात्री वैठा था।

तेन सह चिरं आलप्य—उसके साथ बहुत देर तक बातचीत करके। चिराय श्रुतचरम्—बहुत दिनों से सुने हुए। उररीकृत्य—ऊरीकृत्य=स्वीकृत्य। श्वो द्रष्टा भवान् शिवराजम्—कल आप शिवा जी से मिल सकेंगे। न्यवर्तिष्ट=लौट गया। एतद्देशीयः स्थानीय। नित्यनियमान् निर्वर्त्य-नित्यकृत्य करके। सभासंस्थ एव—सभा में बैठे हुए ही। आकारयत्=बुलाया। (शिवाजी ने) बद्ध महोष्णीषः—बड़ा भारी साफा बाँधे हुए। पादाग्रपर्यन्तविलम्बमान कंचुकः—जिसका कुरता नीचे पैरों तक

लटकता है। सिंहगर्जन अवधीरयता स्वरेण—सिंह के गरजने को लज्जित करने वाले स्वर से। सपत्नोत्सारणसमीरः—शत्रुओं को उड़ाने के लिए हवा के समान। 'रिपौ वैरि सपत्नारिः' इत्यमरः। स्मयमानः—मुस्कराते हुए। व्याहृत्य—कहकर। कवित्वकामनाभिकावृत्तिः—'कवित्त' नामक छन्द में रचित। कवित्वकाम—कवित्त (मनहरण), हिन्दी का प्रसिद्ध छन्द है।

उद्भिज्ज परिषत्

हमारे विषय में लोगों की क्या धारणा है और वे क्या कहते हैं, यह सुनना एक मनोरञ्जक कार्य है। यह कार्य और भी मनोरञ्जक तब हो जाता है जब कि ईश्वर के द्वारा निर्मित जगत का एक ऐसा वर्ग, जो कि हम मनुष्यों से सर्वथा भिन्न है, हमारे विषय में कुछ कहता है। प्रस्तुत उद्धरण में श्री पं० हृषीकेष भट्टाचार्य (१८५०—१९१३) हमें यही बताते हैं अर्थात् वनस्पति वर्ग हमारे विषय में क्या सोचता है। वनस्पति वर्ग के प्रतिनिधि—जिनमें पुराने, विशालकाय और पितामहस्थानीय वृक्ष भी हैं और ललित लता वधुयें भी हैं—निर्जन वन में एक सभा कर रहे हैं। मनुष्य के द्वारा किए गये अत्याचारों पर एक ओजस्वी वक्तृता चल रही है। सम्मेलन के सभापति, परम पूजनीय पीपल महाराज अपने श्रोताओं को प्रभावपूर्ण और युक्तियुक्त ढंग से बता रहे हैं कि ईश्वर की सब प्रकार से पूर्ण और सुन्दर सृष्टि में मनुष्य ही सबसे अधिक भद्दा प्राणी है। सारा उद्धरण व्यङ्ग से भरा है। ये व्यङ्ग और आक्षेप वनस्पति वर्ग के दृष्टिकोण से देखे जाने पर और भी तीखे हो जाते हैं।

सर्वथाप्राणिसंवन्ध रहिते—मनुष्यों के आवागमन संवंध से सर्वथा रहित, अर्थात् नितान्त निर्जन। एकान्तकान्तारे—जन शून्य और दूरस्थित बन में। समवेत सभ्यनिवहान् इव श्रेणी-वन्धावस्थितान्—एकत्रित सभासदों की भीड़ के समान पंक्ति वनाकर स्थित होने वाले। यह और आगामी द्वितीया वहुबचनान्त पद 'विटपिनः' के विशेषण हैं। एकतान चेतसा...निष्पन्दात् —बिना हिले डुले इस तरह चुप चाप बैठे हुए मानों वड़े ध्यान से तन्मय होकर कुछ सुनते हों। संजातपुलकान् इव निश्चलोद्-र्ध्वीकृत पत्रान्—न हिलने वाले पत्रों को इस प्रकार ऊपर उठाए हुए मानों उनको पुलक हो रहा हो। कचित् कचित् अनुमोदयत इव ईषत्संचलितशिरोभागाम् - कहीं कहीं अपने सिर को थोड़ा हिला रहे हैं मानों वक्तृता का समर्थन कर रहे हों। असवरेषुप्रमोदमानान् इव संघर्षितपल्लवकराग्रान्—कभी २ पत्तों रूपी हाथों को रगड़ते हुए (ताली वजाते हुए) मानों प्रसन्न हो रहे हों। व्याख्यानकृत् इव - मानों भाषण देते हुए। इतस्ततः संचालितपल्लवकराग्र—पत्ते रूपी हाथ (के पंजे) को इधर उधर हिलाकर। वनस्पति कुलप्रदीपाः-वनस्पतियों के कुल में दीपक के समान। कुसुमकोमलदन्तरुचः—पुष्प के समान कोमल दाँतों की चमक वाली, कुसुमरूपी कोमल दाँतों की चमक वाली। यथा—श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः। उपवनान्तलतापवनाहतैः किसलयैः सलयैरिवपाणिभिः॥ रघु०, ६।३५। लताकुलललनाः—लताओं के वंश में उत्पन्न होने वाली स्त्रियों, अथवा लता रूपी कुलबधुओं (उत्तम वंश की वधू) सावहिताः—ध्यान सहित। अद्य मानव...विषयः-मनुष्यों के संबंध में बातचीत करना ही हमारी आज की सभा का विचारणीय विषय है। निकृष्टतमाः—सबसे अधिक खराब।

समन्तात्...एवापहारितम्—चारों ओर फैले हुए इस नवीन और आश्चर्यजनक जगत् की रचना करने में इसे उत्पन्न करने वाले भगवान् ब्रह्मा ने जो बुद्धि का उत्कर्ष और रचना चातुर्य दिखाया वह उन्होंने मनुष्यों की रचना करके एकदम से सब नष्ट कर दिया।

प्राक्तनकर्मप्रभावात्—पूर्व जन्म के कर्मों के प्रभाव से अथवा भाग्य के वंश से। "पूर्वजन्म कृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।" जडत्वं आपन्नानाम्–जड़ (चेतना रहित) हो जाने वाले। अस्माकं वार्ता तावदस्तु दूरे—हम लोगों की बात छोड़िए। जीवसृष्टिप्रवाहेषु–विश्व में जन्म लेने वाले सभी जीवों में। परप्रतारकाः—दूसरों को धोखा देने वाले। स्वार्थसाधनपराः-अपने मतलब को बनाने में ही लगे रहने वाले। मायाविनः—छल करने वाले। हिंसानिरताः—हिंसा के कामों में लगे रहने वाले। हिंस्रस्वभावतया प्रसिद्धान्—हिंसक वृत्ति के लिए ख्यात। नित्यनैमित्तिक क्रियाकलापांश्च—नित्य के और कभी २ विशेष अवसरों पर होने वाले कामों को। याथातथ्येन—वास्तविकता से। किमेते...गरिष्ठाः—क्या ये हिंसक पशु मनुष्यों की अपेक्षा अधिक हिंसा करते हैं। प्रकृति नियमो...प्रयोजनम्—प्रकृति के नियम से ही तेज हो जाने वाली पेट की अग्नि (भूख) की शान्ति के लिए ही है। क्रूरचेष्टितानि – निर्दयकाम। स्वोदर-पूर्तिपर्यन्तावसानानि—पेट भर जाने तक के लिए ही हैं। सकृदुपजातायाम्–एक बार हो जाने पर। करतलगतान्—हाथ में आए हुए। न वा तथाविध...परिभ्रमन्ति—अथवा उस प्रकार के दुर्बल जीवों को मारने के लिए ही जङ्गल जङ्गल घूमते हैं। प्रत्युत –बल्कि। ऋषियों मुनियों के आचरण की भाँति शान्त होकर। विविक्तविजनप्रदेशं आश्रित्य–एकान्त और निर्जन वन में जाकर।

हिंसावृत्तिः—मारने का स्वभाव। निरवधिः—सीमारहित। आक्रीडनम्—खेल, विनोद। विक्लान्तचित्तविनोदाय—परेशान चित्त को प्रसन्न करने के लिए। मृगयां अपदिश्य शिकार के बहाने से। हिंसावृत्ते: चरितार्थतां सम्पादयन्ति--हिंसावृत्तिः को कार्यरूप में परिणत करते हैं—अथवा अपने हिंसक स्वभाव को सन्तुष्ट करते हैं। मनुष्यालयं आविश्य—मनुष्यों की बस्ती में जाकर। समनुतिष्ठन्ति—करते हैं। ऐहिकसुखलिप्सया—सांसारिक सुखों को प्राप्त करने की लालसा में। समुत्साहेन—बड़े उत्साह से। पारत्रिकविशुद्धनित्यसुखप्राप्त्याशया—परलोक में मिलने वाला नित्य और शुद्ध (दुखादि से अमिश्रित) सुख प्राप्त करने की आशा से। आसन्नमृत्युशंका वेपमानकलेवरान्--जिनके शरीर समीप स्थित मृत्यु की डर से काँप रहे हैं। उपहत्य—मार कर। स्वहृदयस्य अतिकर्कशनृशंसतायाः—अपने हृदय की अत्यन्त कठोर क्रूरता पर। विदीर्यते--फट जाता है।

भक्ष्यनियमः—खाने पीने का नियम। अनायाससाध्या—आसानी से पूरी की जा सकने वाली। सोदरपूर्तिमात्रपर्याप्तं भक्ष्यवस्तु—पेट भरने लायक ही खाने की वस्तु से। समधिगत्य--पाकर। परितृप्तिम्—सन्तोष। अन्यत्रविषयेष्वपि—और बातों में भी। तृप्तियोगः--सन्तोष हो जाना।

मनुष्यभागधेयेषु—मनुष्य का भाग्य—दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं इत्यमरः। अभिविधित्सवः--प्राप्त करने की इच्छा करने वाले। अव्याहतलोभविक्षोभितहृदयाः—निर्बाध लोभ से जिनका हृदय भरा रहता है। मनुजन्मानः—मनुष्य। सर्वात्मना प्रवर्तन्ते—हर प्रकार से लग जाते हैं। न ? धर्मं अनुधावन्ति—धर्म का पालन नहीं करते। न सत्यं अनुबध्नन्ति—सत्य का आग्रह नहीं करते हैं। तृणवत् उपेक्षन्ते स्नेहम्—स्नेह को तिनके के

समान उपेक्षा करते हैं। लोष्ठवत् परित्यजन्ति शौचम—पवित्रता को कङ्कड़ पत्थर की तरह फेंक देते हैं। अहितमिव परित्यजन्ति आर्जवम्—सिधाई से शत्रु की तरह बचते हैं। अमङ्गलमिव उपघ्नन्ति विश्वासम्—अमङ्गल वस्तुओं की तरह विश्वास का हनन कर देते हैं। पापाचारेभ्यः—पापचरण से। अनृतव्यवहारात्—असत्य व्यवहार से। नहि क्षणमपि विरमन्ति परपीडनात्—पर क्षण भर के लिए भी परपीडन को बन्द नहीं करते हैं। न वा...कृत्यात्—बुरे से बुरा काम भी करने में मुँह नहीं मोड़ते। सिसाधयिषन्ति—साधने की इच्छा करते हैं। यथायथैव स्वार्थसिद्धिः...विषयपिपासा—ज्यों २ इनके स्वार्थ की सिद्धि हो जाती है त्यों त्यों इनकी बड़ी भारी विषयों की प्यास भी बढ़ती जाती है।

एते—मनुष्याः। निकृष्टाः—अधम, नीच। निस्साराः—व्यर्थ, बेकाम। प्रबलवात्योद्‌गमाव्यवहितपूर्वक्षणपर्यन्तम्—प्रबल आँधी आने के ठीक पहले तक। विचलन्ति—हिलते डोलते हैं। निर्भीकानि इव--निर्भय लोगों की तरह। अविशंकित चित्तानि इव--निःशङ्कित वालों की तरह। चित्तसुस्थिराणि अवतिष्ठन्ते। दृढ़ होकर टिके रहते हैं। स्वशक्तितः--अपनी शक्ति भर। संमुखसमर प्रवर्तमानाः—संग्राम में सामने खड़े हुए। सुदूरभविष्यत्काल संटिष्यमाणम्—बहुत आगे चल कर आने वाले। विपत्पातं-आकलय्य—विपत्ति पड़ने की कल्पना करके। परिकम्पमान कलेवराः—काँपते हुए शरीर से। भीतभीताः—डरे हुए। निरन्तरगुरुचिन्ताक्रान्तहृदयाः—जिनका हृदय हरदम बड़ी चिन्ता से भरा रहता है। दुःखदुखेन समयं अतिवाहयन्ति–बड़े दुःख से समय को बिताते हैं। परिकल्पयन्ति...प्रतीकारोपायान्–दुखी होकर विपत्ति को दूर करने के अनेक उपाय बड़े परिश्रम

से करते हैं। येन...अतिक्रान्तमेव—इसके फलस्वरूप मनुष्य जीवन में शान्ति और सन्तोष से मिलने वाले की इच्छा भी नहीं हो पाती। भवितव्यतायाः अवश्यम्भावितया—भवितव्यता के अनिवार्य होने के कारण। दुर्लङ्घ्यतया च नियतिनियमानाम् —भाग्य के नियमों को न मिटा सकने के कारण। एकपदे एव—अचानक ही। अन्तर्धत्ते विद्यावन्ताभिमानः—विद्या का गर्व लुप्त हो जाता है। खर्वीभवति...गर्वः—तीक्ष्ण बुद्धिः और चातुर्य से उत्पन्न होने वाला गर्व नष्ट हो जाता है। प्रलीयते च सुमाहन्‌नहंकारः--अपने को सर्वज्ञ मानने का अभिमान नष्ट हो जाता है। समुदेति—उत्पन्न होता है। कोऽपि...हृदयावसादः-- क्या किया जाय ? इस प्रश्न से उत्पन्न होने वाली उदासी हृदय में छा जाती है। भृशं परिक्षीयते चिरपोषिता नास्तिक्यबुद्धिः— बहुत पुरानी नास्तिकता बिल्कुल नष्ट हो जाती है। सुदूरं... प्रतिद्वन्द्विता--परमेश्वर के प्रति व्यवहार में लाई जाने वाली शत्रुता दूर भाग जाती है। आत्मत्राणाय—आत्मरक्षा के लिए परित्यजन्ति च सर्वविधां आत्मनिर्भरताम— हर प्रकार की आत्म-निर्भरता को छोड़ देते हैं। किमतः परं...वर्तते—इनकी असारता दिखाने में क्या इसके अतिरिक्त और किसी प्रमाण की आवश्यकता है ? अथये...प्रकटयन्ति—वृक्षों की और अन्य प्रकार की सृष्टि रचकर भी ब्रह्मा ने जो मनुष्य जैसे जीवों की रचना की जोकि तिनके से भी निःसार हैं और पशुओं से भी अधम हैं, तो यह बात ब्रह्मा की बुद्धि के उत्कर्ष को कहाँ तक सिद्ध करते हैं ?

—

प्रणयपरतन्त्रा महाश्वेता

उज्जयिनी के राजकुमार चन्द्रापीड एक बार भ्रमण करते हुए अच्छोद सरोवर नामक एक सुन्दर तालाब के पास आए। वहाँ उन्होंने महाश्वेता नाम की एक परम सुन्दरी तपस्वियों का वेष धारण करने वाली रमणी को देखा। राजकुमार ने महाश्वेता से अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाने की प्रार्थना की। महाश्वेता ने उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार करके बताया कि मैं एक गंधर्व कन्या हूँ। मैं एक बार अपनी माता के साथ इस अच्छोद सरोवर में स्नान करने आई थी। वहाँ मैंने एक इतनी मधुर सुगन्ध का अनुभव किया कि जितनी साधारणतया पृथ्वी के फूलों में नहीं हुआ करती है। इस बात का पता लगाने की उत्कण्ठा से कि यह सुगन्ध कहाँ से आ रही है, मैंने उस सुगन्ध का अनुसरण किया और थोड़ी दूर पर एक युवक तपस्वी को देखा, जो कि कामदेव के समान सुन्दर था। और जिसने अपने कान में एक अत्युद्भुत पुष्प-मञ्जरी धारण कर रक्खी थी। वह अपने एक मित्र के साथ इधर उधर घूम रहा था। मैं उसे देखते ही उसके प्रेम में आकण्ठ मग्न हो गई। मैं उसके मित्र, कपिञ्जल के पास गई और पूछा कि यह ऋषि कुमार कौन है, और इसे यह सुन्दर मञ्जरी कहाँ मिली। कपिञ्जल ने बताया ऋषिकुमार का नाम पुण्डरीक है और ये श्वेतकेतु ऋषि के पुत्र हैं और यह मञ्जरी इन्हें इन्द्र के नन्दन वन की अधिष्ठात्री देवी से प्राप्त हुई है। जिस समय मैं कपिञ्जल से इस प्रकार बातें कर रही थी कि उसी समय पुण्डरीक मेरे समीप आए और वह मञ्जरी उन्होंने मेरे कान में लगा दी। मेरे गालों का स्पर्श होते ही उनके सारे शरीर में ऐसा रोमाञ्च

और चञ्चलता व्याप्त हो गई कि उनके हाथ की अक्षमाला नीचे गिर गई और उन्हें इसका पता भी नहीं चला। मैंने उनकी गिरी हुई माला को उठाकर अपने गले में पहिन लिया। इतने में मेरी माता ने स्नान के लिए आवाज दी और मैं बड़ी अनिच्छा से उन्हें छोड़कर स्नानार्थ माता के पास आ गई। कपिञ्जल ने पुण्डरीक को इस प्रकार प्रेम में खो जाने के लिए बुरा भला कहा और अपनी माला वापिस ले लेने के लिए कहा। उन्होंने मुझसे अपनी माला वापिस माँगी पर मैंने उन्हें माला नहीं दी बल्कि अपना कण्ठहार उन्हें दे दिया, जिसे कि उन्होंने देखा नहीं क्योंकि उनकी दृष्टि मेरे मुख पर थी। इसके बाद मैं अपने घर में चली गई और महल में आ गई।

प्रस्तुत अवतरण में महाश्वेता का वृत्तान्त यहीं तक है। इसके बाद का वृत्तान्त इस प्रकार है कि घर आने के बाद उसकी सखियों ने उसे बताया कि पुण्डरीक उसके पीछे २ चुपचाप यहाँ तक चला आया है और बहुत पूछने और कहने पर उसने एक प्रेम-सन्देश वल्कल वस्त्र पर लिख कर दिया है। उसके हृदय में माता-पिता के सम्मान का भाव, कन्या जनोचित लज्जा और पुण्डरीक के प्रति प्रगाढ़ प्रेम में महान संघर्ष होने लगा। अन्त में प्रेम की विजय हुई और वह अपने प्रेमी से मिलने के लिए निकल पड़ी।

महाश्वेता वृत्तान्त कादम्बरी के अत्यन्त सुन्दर स्थलों में से एक है। एक कुमारी के कोमल हृदय पर मधुर प्रेम का गंभीर और अमिट प्रभाव किस प्रकार पड़ता है, इस तथ्य का इसमें काव्यमय वर्णन है। मानव प्रकृति की सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रवृत्तियों का बाण को आश्चर्यजनक ज्ञान है। अपने प्रिय को देखकर महाश्वेता के हृदय में उमड़ने वाले प्रेम का तथा प्रिय

वियोग में उसके हृदय में होने वाली वेदना का बाण ने बड़ा कलापूर्ण चित्रण किया है। इसमें बाण ने एक ओर प्रेम के मादक रूप का वर्णन अपनी सारी कल्पना शक्ति के व्यय से किया है और दूसरी ओर कपिञ्जल द्वारा पुण्डरीक को दी गई तीव्र भर्त्सना द्वारा यह भी कह दिया है कि वासना का दासत्व मानव अन्तःकरण की एक ऐसी दुर्बलता है जो कि मनुष्य के सदाचरण और आध्यात्मिक उन्नति में बाधा देती है।

पृष्ठ २७—कल्याणाभिनिवेशिनः—('तव' (गम्य) का विशे०) कल्याणे मङ्गले अभिनिवेशः आग्रहः यस्य तस्य भवतः—कल्याणकारी बातों का आग्रहपूर्वक अनुसरण करने वाले आप के। श्रुतिविषयमापतितं एव—कानों में पड़ा होगा, सुना होगा। विबुधसद्मनि—विशेषेण बुध्यन्ते इति विबुधाः देवाः तेषां सद्मनि गृहे स्वर्गे—देवताओं के घर (स्वर्ग) में। सोममयूखसंभूतानाम्—चन्द्रमा की किरणों से उत्पन्न होने वाले। किरण...निर्मिता—मानों चन्द्रमा की किरण रूपी जल के साथ गिरने वाले, उसकी समस्त कलाओं के समवेत लावण्य से बना हो (चन्द्रमा की सारी कलाओं के इकट्ठे सौंदर्य से बनी हुई कन्या)–किरणा एव जलं तस्य अनुसारः तेन गलितं तेन। त्रिभुवननयनाभिरामा—तीनों लोक के (मनुष्यों के) नेत्रों के लिए सुन्दर। हिमकिरणावदातवर्णा—हिमकरस्य चन्द्रमसः किरणवत् अवदातः गौरः वर्णो यस्याः सा–जिसके शरीर का वर्ण चन्द्रमा की किरणों के समान स्वच्छ है। मन्दाकिनीं इव क्षीर सागरः–जिस प्रकार दुग्ध समुद्र गङ्गा को अपनी पत्नी बना लेता है। कवि परम्परा में समुद्र को नदियों का पति कहा जाता है। प्रणयिनीमकरोत्-(उसे) अपनी प्रिया (पत्नी) बना लिया। मकरः... रतिः–कामदेव से युक्त रति के समान। सदृशः...मुदमुपगतवती–

योग्य समागम से आनन्द को प्राप्त हुई।

'तयोः' का प्रयोग हंस और गौरी के लिए है। विगत-लक्षणा—विगतानि लक्षणानि शुभचिन्हानि यस्याः सा-- समस्त शुभलक्षणों से रहित दुर्भाग्ययुक्त। इस पद के प्रयोग से महाश्वेता यह व्यक्त करना चाहती है, वह ऐसी दुर्भाग्य-पूर्ण है, प्रिय-समागम उसके भाग्य में ही नहीं बदा है। शोकाय केवलं समुत्पन्ना—केवल शोक बहन करने के लिए ही जन्म लिया। अनेकदुःखसहस्रभाजनम्—हजारों दुःखों की पात्र। अनपत्यतया–निःसन्तान होने के कारण। सुतजन्मातिरिक्तेन—पुत्रजन्मातिशयेन—पुत्र के जन्म (पर होने वाले उत्सवों) से भी बढ़कर। अभिनन्दितघान्-अभिनन्दित हुए, मनाया। कृतयथोचितसमाचारः-- सब प्रकार के आवश्यक विधिविधानों को करके। यथार्थम्—अर्थ के अनुरूप। कलमधुर-प्रलापिनी–मधुर, मनोहर और अस्पष्ट बोलने वाली। यह पद वीणा और कन्या दोनों पक्षों से संलग्न है। वीणेव...संचरन्ती–वीणा की तरह एक गोद से दूसरी गोद में जाने वाली। अविदितस्नेहशोकायासमनोहरम्—अविदितः स्नेहस्य शोकस्य आयासः यस्मिन् अत एव मनोहरं रमणीयम्—प्रेम और शोक में होने वाले कष्टों का ज्ञान न होने के कारण रमणीय लगने वाला। क्रमेण...पदम्–(मालोपमा का यह एक सुन्दर उदाहरण है।) मुख्य वाक्य इस प्रकार है—'कृतं मे वपुषि नवयौवनेन पदम्'—नवीन यौवन ने मेरे शरीर में पैर रक्खा (अपना स्थान बनाया), मैं युवती हुई। बसन्ते इव मधुमासेन—बसन्त ऋतु में जैसे चैत्र महीना। मधुमासे इव नवपल्लवेन—चैत्र महीने में जैसे नये २ पत्ते। मधुकरे इव मदेन—जैसे भौंरे में मद।

पृष्ठ ७५—सकलजीवलोकहृदयानन्ददायकेषु – सारे जगत् के

जीवों के हृदय को आनन्द देने वालों में; (मधुमासदिवसेषु का विशे० है)। मधुमास दिवसेषु—चैत्रमास के दिनों में। मधुमास-विस्तारितशोभम्—मधुमासेन विस्तारिता शोभा यस्य—चैत्रमास के द्वारा जिसकी शोभा का विस्तार किया गया है। यह पद सरः का विशेषण है। प्रोत्फुल्ल...कल्हारम्—जिसमें भाँति २ के श्वेत और नील कल्हार-पुष्प (कमल की जाति विशेष) खिले हैं। कुमुद नील और कल्हार श्वेत होता है। अभ्यागमम्—अभि + आ + गम् + लिट् — आई। स्निग्ध...हृदया--स्निग्ध...मधुरः मनोहृहरतरः अतिशयेन चित्ताकर्षी यः उद्देशः प्रदेशः तस्य दर्शनलोभेन आक्षिप्तं वलवद् ग्रहीतं हृदयं यस्याः—अत्यन्त रमणीय और शीतल प्रदेश को देखने की इच्छा से आकृष्ट। 'उपनीतम्' से 'लोकोचितम्' तक के सभी द्वितीयान्त पद कुसुम-गन्धम् के विशेषण हैं। झटिति शीघ्रता से। बनानिलेन उपनीतम्—बन के शीतल पवन से लाया हुआ। निर्भर... कुसुमपरिमलम्--जिसने समस्त शेष पुष्पों की सुगन्ध को दबा दिया था यद्यपि सारा वन अनेक प्रकार के पुष्पों से भरा हुआ था। अतिसुरभितया... घ्राणेन्द्रियम्—अत्यन्त सुगन्धित होने के कारण, मानों, घ्राणेन्द्रिय (नासिका) से वरबस लिपटा जाता, उसे तृप्त करता, उसे (आनन्द से) भरता हुआ सा था। अहमहमिकया—अहंपूर्विकया—'पहले मैं पहले मैं' करके। मधुकरकुलैः अनुबध्यमानम्—भौंरों की भीड़ जिसके पीछे जा रही है। अनाघ्रातपूर्वतम्—पहले कभी न सूँघा हुआ-यथा अनाघ्रातं कुसुमं किसलयमलूनं कररुहैः। (शाकु० १ अङ्क) अमानुषलोकोचितम्--मनुष्य लोक के लिए अनुपयुक्त।

मुख्य वाक्य इस प्रकार है—उपारूढकुतूहला चाहं स्नानार्थ-मागतं मुनिकुमारकमपश्यम्–कुतः अयं उपारूढकुतूहला–यह कहाँ

से आया है, इस प्रकार का कौतूहल जिसमें आ गया है। मुकुलित लोचना—अधमुँदी आँखों वाली (अत्यन्त सुन्दर सुगन्ध को सूँघने से मिलने वाली तृप्ति के कारण)। तेन... आकृष्यमाणा—भ्रमरी की तरह उस पुष्प की सुगन्ध से खिंच-कर। कौतुकतरला कतिचित्पदानि गत्वा--कौतुक (जिज्ञासा जन्य) से चञ्चल होती हुई कुछ पग चलकर। आगे के सभी द्वितीयान्त पद 'मुनिकुमारकं' के विशे० हैं। अलङ्कारं इव ब्रह्मचर्यस्य—ब्रह्मचर्य के, मानों, आभूषण हों। यौवनं इव धर्मस्य—मानों धर्म के यौवन हों, जिस प्रकार युवावस्था मनुष्य की अत्यन्त शक्तिशाली अवस्था होती है, उसी प्रकार उनमें धर्म अपने पूर्ण विकास को था। विलासं इव सरस्वत्याः—मानों सरस्वती (वाणी) के विलास हों। स्वयम्वरपतिं इव सर्वविद्यानाम्—मानों, सभी विद्याओं के स्वयं वरण किये हुए पति हों। संकेतस्थानं इव सर्वश्रुतीनाम्—मानों सब श्रुतियों के (वेदों के) मिलने के स्थान (संकेत स्थान) हों। आत्मानु-रूपेण–आत्मनः अनुरूपेण–अपने योग्य। सवयसा—समानम् वयः यस्य तेन--समान आयु वाले। देवतार्चनकुसुमान्युच्चिन्वता–देवताओं की पूजन के फूल तोड़ते हुए (तापस कुमारेण का विशे०)।

प्रधान वाक्य इस प्रकार है—तेन च अवतंसीकृतां कुसुम-मञ्जरीमद्राक्षम्। सभी द्वितीयान्त पद 'कुसुममञ्जरीम्' के विशे० हैं। कर्णावतंसीकृताम्—कानों में आभूषण की तरह धारण की हुई। बसन्त...बनश्रियः—बसन्त के आगम को देखकर प्रसन्न हो जाने वाली बन शोभा की मानों वह मुस्कराहट थी। मलय...मधुमासस्य—मानों मलय पवन के स्वागत में चैत्र मास द्वारा दी हुई धान की अञ्जलि के समान।

यौवनलीलामिव कुसुमलक्ष्म्याः पुष्पों की शोभा का मानों यौवन का विलास हो। कृत्तिकातारास्तबकानुकारिणीम्—कृत्तिका नक्-

ताराात्मकं नक्षत्रं तस्याः ताराः तासां स्तवकः तदनुकारिणीम्–कृत्तिका नक्षत्र के तारों के गुच्छे की तरह। अमृतबिन्दुनिस्यन्दनीम्-अमृत की बूँदें गिराने वाली। अस्याः...परिमलः निश्चय इसकी सुगन्ध अन्य सभी फूलों की सुगन्ध से बहुत बढ़कर है।

पृष्ठ ७४—अहो...विधातुः-अहो, ब्रह्मा के पास सर्वोत्तम सौन्दर्य की रचना करने के उपकरणों का कोष कितना अक्षय है! त्रिभुवनाद्भुत...उत्पादितः-ब्रह्मा ने तीनों लोकों में अत्यन्त अद्भुत रूप की राशि कामदेव को उत्पन्न करके उनके रूप से भी बढ़कर रूपराशि वाला यह दूसरा मुनिवेष धारी कामदेव उत्पन्न किया।

मन्ये च...कौशलाभ्यास एव कृतः--मानों ब्रह्मा ने सारे जगत् के नेत्रों को आनन्द देने वाला चंद्र बिम्ब बनाकर और लक्ष्मी के लीला निवास का भवन कमल बनाकर इस मुनि कुमार के मुख के आकार के सदृश वस्तुएँ बनाकर अपने रचना कौशल का अभ्यास किया है। अन्यथा—यदि ऐसा न होता तो। किमिव...कारणम्—इसके सदृश अन्य वस्तुओं को बनाने का क्या कारण हो सकता है। अलीकं चेदं...रविरापिवतीति—यह कथन नितान्त मिथ्या है कि कृष्ण पक्ष में चंद्रमा की घटने वाली कलाओं को सूर्य पी लेता है। ताः खल्वस्य...आविशन्तीति-चंद्रमा की किरणें इसके इस शरीर में प्रवेश कर जाती हैं। वह कहती है कि जैसा कि पुराणों में लिखा है कि चंद्रमा की क्षीण होने वाली किरणें सूर्य में प्रविष्ट हो जाती हैं। यह बात मिथ्या है। वे निश्चय ही इस मुनिकुमार के शरीर में प्रविष्ट हो जाती हैं। कुतोऽन्यथा...लावण्यम्—नहीं तो इस कुमार में, जो कि हरदम ऐसी तपस्या में लगे रहते हैं, जिसमें बहुत क्लेश रहते हैं तथा जो रूप-सौन्दर्य का विनाश करने वाली है, इतना लावण्य कैसे होता।

दूसरे वाक्य में प्रधान अंश इस प्रकार है—मां कुसुमायुधः परवशां अकरोत् । अविचारितगुणदोषविशेषः—अविचारितः सम्यगनालोचितः गुणदोषयोः विशेषः तारतम्यभावः येन—किसी के गुण और दोष की विशेषता न विचार करने वाला अर्थात् वह यह नहीं देखता कि किसी में क्या गुण और दोष हैं। रूपैकपक्षपाती—रूपे एव एकस्मिन् पक्षपातः यस्य सः—जो कि केवल रूप की ओर ही झुकता है। कुसुमसमयमद इव मधुकरीम्—जैसे वसन्त में उत्पन्न होने वाला मद जैसे भ्रमरी को । परवशाम्—परतन्त्र, काम के वश में । विस्मृत-निमेषेण (चक्षुपा का विशे०) जो पलक झँपाना भूल गया है। निमेषशून्येन। किंचिदामुकुलितपक्ष्मणा—जिसके बाल (बरौनियाँ) कली की तरह कुछ २ बन्द हो गए हैं । जिह्मिततरलतरतारा सारोदरेण—जिह्मिता तरलतरा च तारा यस्मिन् तत् जिह्मित-तरलतरतारं अतएव सारं उदरं यस्य सः—पुतलियों के तिरछी और अत्यन्त चञ्चल होने के कारण जिसके नेत्रों का भीतरी भाग चितकबरा प्रतीत होता था। दक्षिणेन...आपिबन्तीव—दाहिने नेत्र से बड़ी अभिलाषा से पीती हुई सी। अनन्तरं च...श्वासमारुतः—इसके अनन्तर लम्बी साँसों की दीर्घ परम्परा (आहितः सन्तानः यैः) मानों कामदेव के लिए स्थान रिक्त करने के लिए हृदय से निकल पड़ी। स्वेद...लज्जा—मानों धारा के रूप में बहने वाली पसीने की बूँदों से लज्जा धुल गई। मकरध्वज...गात्रयष्टिः—कामदेव के पैने बाणों के समूह के गिरने के भय से मेरा शरीर काँपने लगा । तद्रूपातिशयं...रोमाञ्च जालकम्—उसके अतिशय सुन्दर रूप को देखने के कौतूहल के कारण, मानों, आलिङ्गन की लालसा वाले अङ्गों से मानों रोमाञ्च निकल आया । अशेषतः...रागः—मानों पसीने की धारा से

घुलकर पैरों में लगा हुआ राग (लाली या प्रेम) मेरे हृदय में सम्पूर्ण प्रविष्ट हो गया।

'निक्षिपता' और 'अनार्येण' ये दोनों पद मनसिजेन (मदनेन) के विशेषण हैं। शान्त आत्मनि...निक्षिपता—मुझे इस व्यक्ति में जो कि प्रशान्त आत्मा वाला और प्रेम-प्रसङ्ग (सुरतक्रीडा) से सर्वथा दूर हैं, आसक्त कर देने वाले। अनार्येण दुष्ट (मदन) के द्वारा। असदृशम्—अनुपयुक्त 'क्व-क्व' नितान्तअसदृशता का बोधक है। पृष्ठ ७५- क्वेद...तपसां च-कहाँ तेज और तपस्या अत्यन्त उज्ज्वल पात्र ये (मुनिकुमार)। क्व... परिस्पन्दितानि—और कहाँ (मेरे जैसे) साधारण व्यक्ति के द्वारा ही केवल अनुभव योग्य कामदेव की जागृति। चित्रं चेदम्—यह बात बड़ी विचित्र है। अवगच्छन्ती-जानती हुई। विकार-मुमसंहर्तु म—मन के विकार को दबाने के लिए। कथमनेन... अन्तकरणम्-पर क्यों एक क्षण में ही केवल रूप को देखने से ही व्याकुल होकर मेरा अन्तःकरण अपनी स्वतन्त्रता (प्रकृतिस्थता) को खोये दे रहा है। कालोहि...सर्वथा—क्योंकि यह (प्रिय समागम का) समय और (उसके) गुण ही हैं। जो कामदेव को अजेय बना देते हैं। यावदेव सचेतनाऽस्मि—जब तक मैं सचेत (होश में) हूँ। यावदेव लाघवमेतत्-जब तक कामदेव की कुचेष्टाओं से उत्पन्न मेरे इस हल्केपन (अगंभीरता धृष्टता) को यह स्पष्ट रूप से नहीं जान लेता है। अदूरकोपा हि मुनिजन प्रकृतिः—मुनियों का स्वभाव ही जल्दी क्रोध करने का होता है। अपसरणम्—भाग जाना। अशेष...कृत्वा—मुनि लोग सभी के द्वारा पूजनीय होते हैं ऐसा मानकर। तद्वदना० से लेकर कुण्डलम् तक के सभी द्वितीयान्त पद 'प्रणामम्' के विशेषण और केवल क्रिया विशेषण दोनों ही हो

सकते हैं। तद्वदनाकृष्टदृष्टिप्रसरम्—तस्य मुनिकुमारस्थ वदनात् आकृष्टः दृष्टिप्रसरः यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा—उनके मुख से दृष्टिपात जिस कार्य में हटा लिया गया है, वह जैसे होता है वैसे प्रणाम किया अथवा उसके मुख से दृष्टि हटाकर। ईषदुल्लसितकर्णपल्लवोन्मुक्तकपोलमण्डलम्-ईषद् उल्लसितेन कर्ण-पल्लवेन उन्मुक्तं कपोल मण्डलम् यस्मिन्—जिसमें कुछ ऊपर उठ जाने वाले कर्णपल्लव से कपोल मण्डल छूट गया है स्पष्टतर दिखाई देने लगा है । आलोलालकलता-लसत्कुसुमावतंसम्—आलोलाः तरलाः अलकलताः केशलताः तासु लसन् शोभायमानः कुसुमावतंसः यस्मिन्—जिसमें कुछ २ हिलने वाले बालों रूपी लता में लगे हुए पुष्पों के गुच्छे शोभित हो रहे हैं। असंदेशदोलायितमणिकुण्डलम्—असंदेशे दोलायितं मणिकुण्डलं यस्मिन्—जिसमें मणियों से जटित कुण्डल कन्धों पर झूलने लगे थे।

तमपि—मुनिकुमारकम् । मद्विकारदर्शनापहृतधैर्यम्—मेरे काम विकार को देखने से जिसका धैर्य नष्ट हो गया है, उसे। प्रदीपमिव...अनङ्ग—जैसे वायु दीपक को वैसे कामदेव ने उसे चञ्चल कर दिया । तरलता—चञ्चलता। तदा...प्रादुर्भवत्—तब, मानों, अभी २ आए हुए कामदेव का स्वागत करने के लिए उसके रोम खड़े हो गए । वेपथुग्रहीता...अक्षमाला—काँपते हुए हाथ में धारण की हुई अक्षमाला, मानों, ब्रह्मचर्य व्रत के भंग होने के डर से काँप गई। तया तु तस्य अतिप्रकटया विकृत्या—उसके इतने स्पष्ट उस काम विकार से। द्विगुणीकृत-मदनवेशा—जिसमें कामदेव का आवेश (प्रेम) दूना हो गया है। कामपि–अनिर्वाच्य । प्राप्तप्रसरः—लब्धावकाशः–अवसर प्राप्त करके । पृष्ठ ७६—अवतंसीकृता–कान का आभूषण बना ली गई। समुत्सर्पन्–चारों तरफ फैलने वाला। असाधारणसौरभः–अद्भुत सुगन्ध । अत्युदार तपसः—अत्यन्त महान्

तप वाले। कर्णपूरीकृता—कर्णाभूषण की तरह धारण की गई।

किंचिदुपदर्शित स्मितः—किंचित् उपदर्शितं स्मितं येन—कुछ मुस्करा कर। अयि—सुन्दर और कोमल वस्तु का सम्बोधन इस शब्द से किया जाता है। कुतूहलिनि—हे कौतूहल वाली। किमनेन प्रश्नायासेन—इस प्रश्न का कष्ट क्यों कर रही हो। यदि रुचिते सुरभिपरिमला—रुचितः अभिलषितः सुरभिः परिमलः यस्याः सा—यदि इसकी उत्तम सुगन्ध तुम्हें पसन्द हो। आत्मीयाच्छ्रवणादपनीय—अपने कान से निकाल कर। ममतु ...पुलकमाशीत्—उनके हाथ के स्पर्श (सुख) की महान् इच्छा से मेरे कर्णाभूषण के पास के स्थान—कपोल-पर पारिजात के अन्य पुष्प की भाँति पुलक उत्पन्न हो गया। मत्कपोल... करतलात्—मेरे कपोल को स्पर्श करने के सुख से चञ्चल अगुलियों वाले हाथ से। 'अक्षमालां...गलिताम्' में सहोक्ति का एक सुन्दर उदाहरण है। असंप्राप्तां...गृहीत्वा—अक्षमाला के जमीन पर गिरने से पहिले ही ले लिया। सलीलम्—लीला से, विलास से। तत्भुज...अनुभवन्तो—तद्भुजपाशेन संदानितः निगड़ितः—कण्ठः तस्य ग्रहः आलिङ्गनः तस्य सुखं इव अनुभवन्ती—उनकी भुजाओं से अपने कण्ठ का आलिङ्गन किए जाने का सुख, मानों, अनुभव करती हुई। दर्शितापूर्व...अनयम्—इस माला को मैंने अपूर्व हार की शोभा धारण करने वाला कण्ठ का आभरण बनाया अर्थात् माला को गले में धारण किया जो कि एक अपूर्व हार की तरह प्रतीत होती थी। (दर्शिता अपूर्वा हारलतालीला यया)

इत्थंभूते च व्यतिकरे—इस प्रकार की घटना होने पर। छत्रग्राहिणी-छत्र धारण करने वाली दासी। भर्तृदारिके—हे कुमारी, (स्वामी की पुत्री)। 'राजा भट्टारको देवस्तत्सुता

भर्तृदारिका'। इत्यमरः। 'देवी' का प्रयोग महाश्वेता की माता के लिए किया गया है। प्रत्यासीदति—समीप आती है। तेन तस्याः...समाकृष्यमाणा—नई पकड़ी हुई हथिनी, जैसे, अंकुश के प्रथम प्रहार से अनिच्छापूर्वक जैसे तैसे खींची जाती है वैसे ही मैं भी उसके वचन से बलात् खींची गई। तन्मुखाद् ...दृष्टिमाकृष्य—उसके मुख पर से बड़े कष्ट से दृष्टि को खींचकर जोकि (दृष्टि) मानों, सौन्दर्य रूपी अमृत के कीचड़ में फँसी थी, और मानों कपोल पर होने वाले पुलक रूपी काँटों के जाल में फँसी थी और मानों कामदेव के बाण की नोक से कीलित थी। (कील गाड़ कर जड़ दी गई) अथवा मानों सौभाग्य रूपी डोरे से सी दी गई थी। धैर्यस्खलितम्–धैर्य का नाश। प्रकटित-प्रणयकोपः–प्रेम के कारण उत्पन्न होने वाला क्रोध प्रकट करके।

पृष्ठ ७७—नैतदनुरूपं भवतः--आपके योग्य यह कार्य नहीं है। क्षुद्रजनक्षुण्णः—क्षुद्रजनैः प्राकृतजनैः क्षुण्णः आचरितः—तुच्छ मनुष्यों द्वारा किया हुआ। एष मार्गः—अर्थात् वासना का दास होना। धैर्यधनाः—धैर्यं धनं येषाम्—हिः साधवः—साधु-जनों के पास धैर्य ही धन होता है। यः कश्चित्...न रुणत्सि—एक साधारण व्यक्ति की तरह व्याकुल होने वाले अपने आपको (व्याकुल होने से) क्यों नहीं रोकते हो। कुतस्तव···येनास्येव कृतः—आज तुम्हारे अन्दर यह सर्वथा नवीन इन्द्रियों की अयव्यवस्था (अविवेक) कहाँ से आ गई। जिससे तुम ऐसे हो रहे हो। तत्—वह, अर्थात् प्रसिद्ध। इन्द्रियजयः—इन्द्रियों पर विजय पाना। वशित्वम्—आत्म नियन्त्रण। प्रशान्तिः—मन की शान्ति। कुलक्रमागतं ब्रह्मचर्यम्—कुल परम्परा से चला आता हुआ ब्रह्मचर्य व्रत। सर्वविषयनिरुत्सुकता—सब प्रकार के विषयों से उदासीनता। श्रुतानि—वेदों का अध्ययन।

वैराग्य बुद्धयः—वैराग्य की वृत्ति। उपभोगविद्वेषितम्—विषयोपभोग से द्वेष करना। सुखपराङ्मुखता—सुखों से दूर रहना। तपसि अभिनिवेशः—तप का आग्रह। संयमिता—संयम से रहना। भोगानां उपरि अरुचिः—भोग अच्छे न लगना। यौवनानुशासनम्—यौवन को (यौवन की उद्दाम प्रवृत्तियों को) दबाना।

सर्वथानिष्फला प्रज्ञा—इतनी उच्च बुद्धि बिल्कुल व्यर्थ है। निर्गुणो धर्मशास्त्राभ्यासः-धर्म शास्त्र का अध्ययन बेकार है। संस्कारः निरर्थकः-संस्कारों से भी कुछ लाभ नहीं हुआ। निरुपकारकः गुरुपदेश विवेकः-गुरु के उपदेश से उत्पन्न होने वाला विवेक व्यर्थ है (उससे कुछ उपकार नहीं हुआ) निष्प्रयोजना प्रबुद्धता-तुम्हारी ज्ञान सम्पन्नता से भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। यदत्र...अभिभूयन्ते-जो कि तुम्हारे जैसे व्यक्ति भी वासना से दूषित हो जाते हैं और प्रमाद करने लग जाते हैं। प्रमादोऽनवधानता (लापरवाही) इत्यमरः। कथं... न लक्षयसि-ऐसा क्यों है कि तुम्हें अपने हाथ से माला का गिर जाना और उसका (महाश्वेतां का) माला को ले जाना तुम नहीं जान सके।

अहो विगतचेतनत्वम्-तुम्हारी संज्ञा का इस प्रकार नष्ट होना (बेहोशी) आश्चर्यजनक है। अपहृता नाम इयम्—निश्चय ही, यह (माला) अपहृत हो गई है। इदमपि...हृदयम्-इस दुष्टा के द्वारा ले जाये जाते हुए अपने हृदय को तो कम से कम रोक लो। इस अंश में बाण की शैली का अर्थ गाम्भीर्य और दृष्टव्य है।

किंचिदुपजापलज्जः—(पुण्डरीकः (गम्य) का विशेषण) कुछ लज्जित होने वाला। किं मामन्यथा संभावयसि-आर्य मुझे

ग़लत क्यों समझते हैं ? नाहमेनं...अपराधमिमम्–मैं इस दुष्ट कन्या के माला ले लेने के इस अपराध को सहन नहीं कर सकता। अलीककोपकान्तेन—अलीकः मिथ्या न तु पारमार्थिकः कोपः तेन कान्तेन मनोहारिणा—कृत्रिम क्रोध से सुन्दर। प्रयत्नविरचितभीषणभ्रुकुटिभूषणेन–प्रयत्नेन वास्तवकोपाभावाद् विरचिता भीषणा भ्रुकुटिः एव भूषणं यस्मिन्—प्रयत्न करके टेढ़ी की हुई भौंहें जिसमें आभूषण है। चञ्चले–अविमृश्य-कारिणी—विना विचारे करने वाली। पृष्ठ ७८–पदात्पदमपि-न गन्तव्यम्—एक कदम भी न चलना। मकरध्वजलास्यारम्भ-लीलापुष्पांञ्जलिमिव–मकरध्वजस्य लास्यारम्भः लीलानृत्यारम्भः क्रीडा तत्र पुष्पाञ्जलिमिव—कामदेव के ललित नृत्य के आरम्भ में दी हुई। पुष्पों की अञ्जलि के समान। मन्मुखासक्त... निधाय—मेरे मुख में दृष्टि लगाए रखने वाले और शून्य हृदय वाले उसके फैलाये हुए हाथ पर रखकर। पुण्डरीक ज्ञानशून्य हो रहा था। उसने यह ध्यान नहीं दिया कि वह क्या कर रही है और यंत्र चालित की भाँति उससे, अक्षमाला के वदले में, विना देखे ही, एकावली (रत्नमाला) ले ली। स्वेदसलिल... अवातरम्—यद्यपि मैं पसीने में नहाई हुई थी फिर भी तालाव में स्नान करने के लिए उतर गई। उत्थाय=जल से निकल कर। कथमपि...सखीजनेन–जैसे बड़े प्रयत्न से नदी उल्टी ले जायी जाय वैसे सखियों के द्वारा किसी प्रकार ले जाई गई।

कन्यान्तःपुरम्—कन्याओं के रहने का महल। कुमारीपुर-प्रासादः--कुमारी कन्याओं के लिए अलग बने हुए महल। विसृज्य च सखीजनं द्वारि—सखियों को दरवाजे से ही विदा करके। निवारिताशेषपरिजनप्रवेशः--निवारितः अशेषपरिजनस्य प्रवेशः यया–सभी सेवकों के प्रवेश को रोक कर। सर्वव्यापार।

उत्सृज्य--सब कामों को छोड़ कर। मणिजालगवाक्षनिक्षिप्तमुखी
मणीनां जालानि यस्मिन् एतादृशः गवाक्ष वातायन तत्र निक्षि
मुखं यया सा—मणिजटित झरोखें में मुख डाल कर। गवाः-
गवां अक्षि इव। 'अक्ष्णोऽदर्शनात्' सूत्र से अच् प्रत्यय
तत्सनाथतया.. ईक्षमाणाः- उसी दिशा की ओर देखती हुई जोकि
पुण्डरीक की स्थिति से मानों सजकर पूर्णचन्द्र के उदय होने
मानों अलंकृत होकर, मुझे देखने में अच्छी लगती थी।
तस्माद्दिगन्तराद्...ईहमाना—उस ओर से चलकर आती हु
हवा से भी, जङ्गली पुष्पों की सुगन्ध से भी और चिड़ियों
चहचहाट से भी उसके (पुण्डरीक) विषय में पूछने क
इच्छा करने वाली। प्रष्टु के दो कर्म हैं—वार्ताम् औ
अनिलंपरिमलं आदि २। तथैव तां...कण्ठेनोद्वहन्ती—उ
अक्षमाला को उसी प्रकार कण्ठ में—मानों, उसके विरह
आतुर होकर निकलने वाले जीव को रोकने वाली मानक
पहनती हुई। (तद्विरहेण व्याकुलं यज्जीवितं तस्य उद्गम
निर्गमः तस्य रक्षावलीम्) तथैव च तया...पारिजातमञ्जर्या—मान
उसके पिछले चरित्रों को कहने के लिए कान में लगी हुई उस
मञ्जरी से। (प्रस्तुतः तस्य रहस्यालापः यया) तथैव च तेन...कपोल
फलका=उसके हाथ के स्पर्श से उत्पन्न होने वाले सुख से उत्पन्न
होने वाले रोमाञ्च से, जो कि कदम्ब की कली से बने कर्णाभूषण
के समान प्रतीत हो रहा था, एक ओर कण्टकित कपोलवाली
मैं। तस्य करतलस्य यः स्पर्शः तस्य सुखं तस्मात् जन्म
यस्य। कदम्बस्य मुकुलं एव कर्णपूरः तद्वत् आचरता
कण्टकितः एकः कपोलफलकः (कपोलः फलकः इव) यस्याः
निष्पन्दं अतिष्ठम्—बिना हिले डुले बैठी हूँ।

———